Con. 4. VIII-16.49
320

अंक 8
संख्या 16

सोमवार
6 जून
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप
[अनुच्छेद 111 से 114, 119, 121 से 123 तथा
191 से 193 पर विचार] ...943-1005

भारतीय संविधान सभा

सोमवार, 6 जून सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः आठ बजे, अध्यक्ष महोदय माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का प्रारूप—(*जारी*)

अनुच्छेद 111—(*जारी*)

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 111 पर अब हमें बहस जारी करनी है। इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में आए हुए संशोधनों में एक बड़ी तादाद ऐसे संशोधनों की भी है जो वस्तुतः इससे सम्बन्ध नहीं रखते हैं। गत शुक्रवार को अनुच्छेद 110 पर मैंने एक लम्बी बहस यहां चलने दी थी। उस बहस का सही-सही सम्बन्ध इस अनुच्छेद से तो नहीं था पर उसे यहां इसी उद्देश्य से मैंने चलने दिया था कि इससे आगे के अनुच्छेदों पर बहस संक्षेप में ही समाप्त हो जायेगी। अनुच्छेद 111 में उन अपीलों के सम्बन्ध में व्यवस्था की गई है जो व्यवहार विषयक मामलों के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय के समक्ष रखी जायेंगी। मैं यह चाहता हूं कि इस पर विचार करने में, ऐसे संशोधनों को लाकर जिनका सम्बन्ध व्यवहार विषयक मामलों की अपीलों से हो, आप उस मसले को कृपया जटिल न बनाइयेगा। आपराधिक मामलों की अपीलों की चर्चा न करते हुए, केवल इस अनुच्छेद से सम्बन्ध रखने वाले संशोधनों पर विचार करके पहले हमें इस अनुच्छेद पर निर्णय कर लेना चाहिये। आपराधिक अपीलों के सम्बन्ध में जो संशोधन हैं उन सब पर विचार करने की अनुमति मैं आगे चल कर दे दूंगा। मेरा ख्याल है, इससे वाद-विवाद में समय कम लगेगा और सभा का ध्यान बटेगा नहीं बल्कि एक मसले की ओर रहेगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रांत : जनरल): संशोधन नं. 12 पर मेरा एक संशोधन है श्रीमान्।

***अध्यक्षः** और भी बहुत से संशोधन मेरे पास हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** पर उनको तो आप निबटा चुके हैं।

***अध्यक्षः** अपने संशोधन को अगर आप पेश करना चाहते हैं तो पेश कर सकते हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मेरा यह प्रस्ताव है श्रीमान्:

> ''कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 1912 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 111 के खंड (1) में 'An appeal' शब्दों के पहले 'Subject to any law made by Parliament' शब्द रखे जायें''

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

व्यवहार विषयक मामलों में अगर वह ऐसे हैं कि उनकी अपील उच्चतम न्यायालय में की जा सकती है, इस अनुच्छेद से उच्चतम न्यायालय में अपील करने का पूरा अधिकार मिल जाता है। कल हमने यहां यह देखा कि आपराधिक मामलों में यहां तक ऐसे मामलों में जहां मृत्यु दंड दिया गया हो, उच्चतम न्यायालय को अपील करने का अधिकार नहीं दिया गया। मैं केवल यही चाहता हूं कि उच्चतम न्यायालय में व्यवहार विषयक अपीलों को भरमार न हो जाये। इसलिये मैं चाहता हूं कि व्यवहार विषयक मामलों में उच्चतम न्यायालय में अपील करने का जो अधिकार है उसकी संसद समय-समय पर समीक्षा कर लिया करे।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई:** (मद्रास : जनरल): संशोधन क्या है?

***अध्यक्ष:** संशोधन है संशोधन सूची के संशोधन नं. 1912 के सम्बन्ध में संशोधन का रूप यह है:

> ''कि खंड (1) में 'An appeal' शब्दों के पहले 'Subject to any law made by Parliament' शब्द जोड़े जायें।''

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मेरा अभिप्राय इतना ही है। श्रीमान् कि उच्च न्यायालयों के व्यवहार विषयक मामलों से निर्णयों के विरुद्ध, उच्चतम न्यायालय में अपीलों की भरमार न होने पाये।

***अध्यक्ष:** यह संशोधन वैसा ही है जैसा कि संशोधन नं. 1911 जिसकी सूचना श्रीमती दुर्गाबाई ने दे रखी थी। श्रीमती दुर्गाबाई ने अपना संशोधन पेश नहीं किया। एक-दूसरे संशोधन पर यह संशोधन आप पेश कर रहे हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं यह चाहता हूं श्रीमान्, कि उच्चतम न्यायालय को उन्हीं मामलों से सम्बन्ध रखने वाली अपीलों पर सुनवाई करने का अधिकार हो जिनके सम्बन्ध में संसद विधि द्वारा निर्णय करे। इससे यह होगा कि व्यवहार विषयक मामलों को अपीलें उच्चतम न्यायालय में कम संख्या में पहुंचेगी। मान लीजिए आज संसद यह अनुभव करती है कि व्यवहार विषयक मामलों की अपीलें उच्चतम न्यायालय में जा सकती हैं पर सम्भव है कुछ दिनों बाद संसद इसे अनावश्यक समझने लगे। इसलिये इस संशोधन से संसद को यह शक्ति रहेगी कि कुछ दिनों बाद उच्चतम न्यायालय के इस अधिकार को वह वापस ले ले। अगर संसद को यह शक्ति नहीं प्राप्त रही है तो उच्चतम न्यायालय को व्यवहार विषयक मामलों में जो अधिकार क्षेत्र प्राप्त है उसमें परितर्वन करने के लिये विधान में संशोधन करना पड़ेगा।

मैं कह चुका हूं कि व्यवहार विषयक छोटे-मोटे मामलों की अपीलें अगर उच्चतम न्यायालय में सुनी जा सकती हैं तो खून सम्बन्धी मामलों की अपीलें वहां क्यों नहीं सुनी जायें। इसलिये मेरे ख्याल में इसकी कोई वजह नहीं है कि अमीर लोग तो अपने व्यवहार विषयक मामलों को लेकर उच्चतम न्यायालय में पहुंच जायें और उससे लाभ उठायें और गरीब मौत की सजा के खिलाफ भी अपनी अपील वहां न ले जा सके। इसलिये व्यवहार विषयक

मामलों की अपीलों को उच्चतम न्यायालय में भेजने के सम्बन्ध में अगर संसद को अनियमन की शक्ति दे दी जाये तो बहुत अच्छा होगा। मूल अनुच्छेद में जो व्यवस्था है उससे तो यह कहीं उत्तम होगा। अगर मूल अनुच्छेद यों ही रहने दिया जाता है तो इसका दुरुपयोग होगा और अपना संविधान वकीलों के लिये एक अखाड़ा बन जायेगा। वे लोग सभी तरह की व्यवहार विषयक अपीलों को उच्चतम न्यायालय में ले जायेंगे। अमीरों के मुकदमों की बहस के लिये जब बडे-बड़े वकील उच्च न्यायालयों में खड़े होंगे तो उच्च न्यायालय भी अपील को उच्चतम न्यायालय में ले जाने की उन्हें अनुमति दे देंगे जिसका नतीजा यह होगा कि उच्चतम न्यायालय में अपीलों की भरमार हो जायेगी; अभी उस दिन यह दलील यहां दी गई थी कि अगर मृत्यु दंड प्राप्त व्यक्तियों को अपीलें भी उच्चतम न्यायालय में जायेंगी तो हमें वहां करीब 20 या 30 न्यायाधीश रखने होंगे। अगर यह अनुच्छेद ज्यों का त्यों रहने दिया जाता है और व्यवहार विषयक मामलों को सभी अपीलों को उच्चतम न्यायालय में ले जाने की अनुमति रहती है तो उस हालत में तो हमें बहुत से न्यायाधीश 20 या 30 से कहीं ज्यादा न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय में रखने पड़ेंगे। इसलिये यह एक बड़ा ही सरल संशोधन है जो संसद को यह शक्ति देना चाहता है कि व्यवहार विषयक मामलों की अपीलें जो उच्चतम न्यायालय में जायेंगे उनके सम्बन्धों में समय-समय पर विधि-निर्माण का संसद को अधिकार रहेगा।

***श्री एम. थीरूमल राव** (मद्रास : जनरल): यह संशोधन आखिर संशोधन नं. 1911 से कैसे संगत होता है।

***अध्यक्ष:** जो भी हो, सूचना में यही कहा गया है।

हमारे सामने इस अनुचछेद पर तीन और अन्य संशोधन भी हैं जिनमें आपराधिक मामलों की अपीलों का उल्लेख नहीं है।

(संशोधन नं. 1924 और 1925 पेश नहीं किये गये।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं श्रीमान्:

> ''कि अनुच्छेद 111 के खंड (2) में इसमें संविधान के निर्वाचन का सारवद विधि-प्रश्न अन्तर्हित है जिसक अशुद्ध निर्णय किया गया है। (the case involves a substantial question of law as to the interpretation of this Constitution which has been wrongly decided) शब्दों की जगह 'संविधान के निर्वचन के एक सारवद विधि प्रश्न का अशुद्ध निर्णय किया गया है' (a substantial question of law as to the interpretation of this Constitution, has been wrongly decided)' शब्द रखे जायें।''

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद अथवा संशोधनों के सम्बन्ध में कोई बोलना चाहते हैं?

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): संशोधन के सम्बन्ध में कोई संशोधन पेश करने का आखिरी वक्त क्या है? प्रो. शिब्बनलाल ने अपना संशोधन बड़ी देर से पेश किया है।

***अध्यक्ष:** बैठक शुरू होने से पहले ऐसा संशोधन पेश हो जाना चाहिये। परन्तु यह संशोधन किसी संशोधन सम्बन्धी संशोधन पर नहीं है। यह केवल एक संशोधन पर रखा गया है।

डा. अम्बेडकर के नाम से एक और दूसरा संशोधन भी है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान्:

> ''कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 1916 से 1919 तक के संशोधनों के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 111 के खंड (1) के उपखंड (क) में, 'बीस हजार रुपये' शब्दों के बाद 'या ऐसी किसी अन्य राशि से जो इसके बारे में संसद विधि द्वारा निर्धारित करे' शब्द रखे जायें।''

***श्री एम. थीरूमल राव:** इस खंड पर गत दिन जो बहस हुई वह सभा की बैठक के आखिरी दिन हुई और वह दिन वकीलों का दिन रहा। हम तो यह समझते थे कि संघ न्यायालय सम्बन्धी प्रावधानों पर शायद केवल वकीलों को ही वाद-विवाद में भाग लेने दिया जायेगा। यहां इन प्रावधानों पर होने वाली बहस की जो रिपोर्ट समाचार-पत्रों में निकली है उसको पढ़ने से तो ऐसा मालूम होता है कि इस बहस में उन्हीं लोगों को मौजूद रहने की गुंजाइश है जो किसी दीवानी मामले में वादी या प्रतिवादी अथवा जो किसी आपराधिक मामले में अभियुक्त या अपराधी की हैसियत से आवें। पर मैं आपके सामने खड़ा हो रहा हूं चन्द बातें कहने के लिये केवल एक अनभिज्ञ नागरिक और करदाता की हैसियत से जिसे विधि प्रशासन में कुछ दिलचस्पी है।

मुझे इस बात से अवश्य ही कुछ आश्चर्य हो रहा है कि डा. अम्बेडकर जैसे प्रशान्त गम्भीर एवं समझदार व्यक्ति, जो एक प्रख्यात वकील होने के साथ ही कानून शास्त्र का एक प्रकाण्ड वेत्ता भी है। आखिर कैसे फुसलाने में आकर राजी हो गये और उच्चतम न्यायालय की शक्तियों के बारे में विस्तार की बातों को विधान में रखना उन्होंने मंजूर कर लिया। शायद श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर और माननीय मित्र श्री मुंशी जैसे प्रख्यात वकीलों के कहने पर ही आपने ऐसा किया है। सर अल्लादी व्यवहार के एक प्रख्यात वकील हैं। श्री मुंशी ने अपनी बाबत खुद मंजूर किया है कि वह व्यवहार और आपराधिक (दीवानी और फौजदारी) दोनों ही मामलों में वकील हैं। इन धुरंधर वकीलों की राय कुछ भी हो, पर एक अनाड़ी नागरिक तो इस बात की कल्पना ही नहीं कर सकता कि संघ न्यायालय की शक्तियों के बारे में इतनी विस्तार की बातों को विधान में लिपिबद्ध करने की कोई जरूरत है। विधान में, उस सम्बन्ध में क्या प्रावधान रखे जायें, इसके बारे में अभी उस दिन जो वाद-विवद हुआ है, जिसमें विशेषज्ञों ने भाग लिया है, वह अवश्य ही बड़ा पांडित्यपूर्ण रहा है, विस्तार की बातों पर इतना अधिक विचार किया गया कि उच्चतम न्यायालय में व्यवहार विषयक मामले किस रकम तक के लिये जायें इसकी भी लोगों ने एक सीमा निर्धारित कर दी और श्री ठाकुरदास भार्गव के इस संशोधन पर कि आपराधिक मामलों की हर अपील उच्चतम न्यायालय में जा सकती है, बड़ा ही मनोरंजक वाद-विवाद हुआ था। यह नहीं समझ में आ रहा है कि आखिर हमारी प्राचीन सभ्यता

में जो न्याय की व्यवस्था थी जो प्रथा थी, उससे हटना क्यों हमारे लिये जरूरी है। दुनिया के विभिन्न विधानों की नकल करके तो हमने अपना विधान तैयार किया है। किस तरह का विधान और किस तरह की न्याय व्यवस्था रखना देश की परम्परा और प्रकृति के अनुकूल होगी, इसका कोई सही चित्र किसी के दिमाग में भी नहीं उपस्थित दिखाई देता है।

गत शताब्दि में जब यहां अंग्रेजों की हुकूमत थी, न्याय पाने में इतना समय लगता था कि वह न पाने के ही बराबर था। देश में जो खूब धनी होते थे वही लोग न्याय खरीद सकते थे। गरीब आदमी तो इन्साफ पा ही नहीं सकता था। उसकी कोई सुनने वाला न था। ग्राम पंचायतों की व्यवस्था अब समाप्त कर दी गई है। न्याय फौरन मौके पर मिल जाये, अब यह बात ही नहीं रह गई है। अब तो न्यायालयों का एक बड़ा जाल बिछ गया है पर इन न्यायालयों में वे ही जा सकते हैं जो धनी हैं। आप जितने ही धनी होंगे उतना ही अधिक मौका आपको मिलेगा कि इन न्यायालयों में जाकर गरीबों के खिलाफ लड़ें और सफलता प्राप्त करें।

मद्रास हाईकोर्ट में कई बड़े दिलचस्प मामलों को देखने का मौका हमें खुद मिला है। एक जमींदार के जन्म को लेकर एक मामला चला। मामला शुरू हुआ था उस समय जबकि वह 6 वर्ष का था। पर वह व्यक्ति छोटी से छोटी अदालत से लेकर बड़ी से बड़ी अदालत, यहां तक कि प्रिवी कौंसिल तक इस मामले को लेकर दौड़ता रहा पर उसका फैसला न हो पाया यानी इस बात का फैसला कहीं भी न हो पाया कि पिता का वही जायज और वास्तविक पुत्र है या नहीं। 50 साल तक वह जमींदार मामला लड़ता रहा और यह निर्णय न हो सका कि वास्तविक और जायज सन्तान वह था या नहीं और अन्ततोगत्वा न्यायालय को पिता के वसीयत-नामे पर ही निर्भर करना पड़ा जिसमें उसने सारी सम्पत्ति उस जमींदार को दे रखी थी। सौभाग्य से कांग्रेस सरकार ने जमींदारी प्रथा उठा कर उसे अब इन झगड़ों से मुक्त कर दिया है। ऐसे भी परिवार आपको मिलेंगे जिसमें एक मुकदमा तीन-तीन पीढ़ियों तक चलता रहा। पिता ने मुकदमा शुरू किया और उसका पुत्र उसे लड़ता रहा और अब उसका पौत्र मामले को लड़ रहा है। परिवार मामले को लड़ते-लड़ते कंगाल हो गया। यही तो है अपनी प्रचलित न्याय-व्यवस्था जिस पर यहां कानूनी पंडित लोग बहस कर रहे हैं। आप लोग यहां यह बहस कर रहे हैं कि अपने विधान का स्वरूप क्या है।

***अध्यक्षः** माननीय सदस्य अवश्य ही एक मनोरंजक वक्तृता दे रहे हैं पर विचाराधीन अनुच्छेद से तो इनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

***श्री एम. थीरूमल रावः** अनुच्छेद का विरोध करने का मुझे अधिकार प्राप्त है पर मैं उस अधिकार का प्रयोग नहीं करना चाहता हूं। विधान में जिस तरह की बातों का समावेश किया जा रहा है और उसमें विस्तार की जो सभी बातें भरी जा रही हैं उस पर मैं अपना असंतोष मात्र व्यक्त करने के लिये खड़ा हुआ हूं। दुनिया के अनेक विधान हम सबने देखे हैं। आयरिश विधान बड़ा ही संक्षेप में है और उस में न्याय व्यवस्था और प्रशासन के सम्बन्ध में उतने अधिक प्रावधान नहीं रखे गये हैं जितना कि आप अपने विधान में भर रहे हैं और उसे...

***अध्यक्ष:** इस समय हम इस प्रश्न पर नहीं विचार कर सकते हैं कि विधान उसी रूप में रखा जाये जिसमें कि इसका प्रारूप तैयार किया गया है अथवा अन्य किसी रूप में।

***श्री एम. थीरूमल राव:** मेरा मंतव्य यह है श्रीमान्, कि अपने विधान को हमें विस्तार की इन बातों से बोझिल न बना देना चाहिये। इन विस्तार की बातों को संघ न्यायालय और विभिन्न न्यायालयों को क्या-क्या शक्तियां प्राप्त रहेंगी, इसे हमें देश के विधान-मंडल पर छोड़ देना चाहिये। वही इसके सम्बन्ध में व्यवस्था करेंगे। बस यही मेरा कहना है।

***अध्यक्ष:** इस आशय का कोई संशोधन तो नहीं पेश हुआ है।

***श्री एम. थीरूमल राव:** डा. अम्बेडकर ने जो संशोधन रखा है उसमें कहा गया है कि संघ न्यायालय को क्या शक्ति प्राप्त रहेंगी। इसका निश्चय संसद विधि द्वारा करेगी। विधान में इन शक्तियों को लिपिबद्ध करना आवश्यक नहीं है इसी बात का मैं समर्थन करना चाहता हूं।

मैं सभा का अधिक समय नहीं लेना चाहता हूं। मैं उसका ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं कि न केवल सभा के अन्दर बल्कि सभा के बाहर भी, बहुत से लोग ऐसे हैं जिनका मत यह है—अवश्य ही उन्होंने अपने मत को व्यक्त नहीं किया है, उसे मूक रखा है—कि अपने देश का विधान यथासम्भव सरल होना चाहिये और न्याय प्रशासन के सम्बन्ध में इतनी कानूनी बारीकियां न रख देनी चाहिये कि उसके परिणामस्वरूप गरीब न्याय पाने से ही वंचित रह जायें। मैं यह आग्रह करूंगा कि सभा को कानूनी विस्तार की बातों में न पड़ना चाहिये। उन्हें विधानमंडल पर छोड़ देना चाहिये कि जैसा जरूरी समझे निश्चय करे।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): श्रीमती जी. दुर्गाबाई के संशोधन के प्रति मेरी सहानुभूति है और उसका मैं समर्थन करना चाहूंगा। यद्यपि उन्होंने अपने संशोधन को यहां पेश नहीं किया है पर श्री शिब्बनलाल सक्सेना ने उसके सम्बन्ध में संशोधन रख कर उनकी ही बात सभा के समक्ष रख दी है।

अनुच्छेद 111 अगर ज्यों का त्यों रहने दिया जाता है और उसमें यह उल्लेख नहीं कर दिया जाता है कि संसद द्वारा निर्मित विधि के अधीन रहते हुए उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है तो विधान के अनुसार अपील करने का अधिकार मिल जायेगा और अगर आगे चलकर अपील विषयक प्रक्रिया में या तत्सम्बन्धी अधिकार में कोई परिवर्तन करना हो तो वह तभी किया जा सकेगा जबकि विधान में संशोधन किया जाये। इसलिये ऐसी व्यवस्था का रखना वांछनीय नहीं हो सकता है। व्यवस्था कठोर न होकर लचीली होनी चाहिये जब तक संसद इस सम्बन्ध में हस्तक्षेप न करेगी अपीलों के सम्बन्ध में जो वर्तमान व्यवस्था है वही चलती रहेगी पर इस बात का कोई भी कारण नहीं है कि सभी अपीलों के संबंध में एक सी व्यवस्था कर दी जाये और विधान में इसको लिपिबद्ध किया जाये। इस अंश में अपना यह अनुच्छेद 111 अवश्य ही प्रतिगामी है। उस आरम्भिक काल से, जब से कि उच्च न्यायालयों की स्थापना के लिये राजाज्ञा निकाली गई थी, अब तक के अपने विधि निर्माण सम्बन्धी अधिकारों के इतिहास का अवलोकन कीजिये तो पता चलेगा

कि भारत के विभिन्न उच्च न्यायालयों का क्षेत्राधिकार उस समय भी जबकि विधानमंडल के लिये निर्वाचित प्रतिनिधियों की व्यवस्था नहीं की गई थी, सपरिषद् गवर्नर जनरल के विधि निर्माण विषयक सामान्य क्षेत्राधिकार के अधीन था। आज भी व्यवहार प्रक्रिया-संहिता (Civil Procedure Code) के उपबंधों के अनुसार, प्रिवी कौंसिल में की जाने वाली अपील भारत के केन्द्रीय विधानमंडल के क्षेत्राधिकार के अधीन है, धारा 109 के अनुसार, प्रिवी कौंसिल को अपील, सम्राट की सरकार द्वारा निकाले गये परिषद् के आदेश के अधीन होगी। अवश्य ही डोमिनियन एक्ट के पास होने के पहले की बात मैं कह रहा हूं। सम्राट की सरकार द्वारा निकाले गये परिषद् के आदेश के अधीन वाली व्यवस्था भी एक लचीली व्यवस्था है और संसद के हस्तक्षेप के बिना भी, उसमें परिवर्तन किया जा सकता है क्योंकि प्रिवी कौंसिल को उस पर क्षेत्राधिकार प्राप्त है। उसी के अधीन परिषद् के आदेश निकाले जाते हैं।

डा. अम्बेडकर ने जो संशोधन रखा है वह अवश्य ही एक समुचित संशोधन है, यद्यपि, मेरे मत से वह उतना आगे नहीं जाता है जितना कि जाना चाहिये। पर उससे कम से कम एक दोष अवश्य दूर हो जाता है। विवादग्रस्त विषय की राशि या मूल्य की एक सीमा मूल अनुच्छेद 111 (क) में निर्धारित कर दी गई थी और उससे कम राशि के मामलों की अपील उच्चतम न्यायालय में न हो सकती थी। पर संशोधन के अनुसार संसद विधि द्वारा जो भी राशि निर्धारित करेगी उस राशि तक के मामलों पर अपील की जा सकती है। पर मेरी अनुभूति यह है कि समूचा अनुच्छेद भारत के भावी संसद के अधिकारक्षेत्र के अधीन रहना चाहिये और कोई कारण नहीं है कि इस सम्बन्ध में संसद के विवेक पर आप कोई प्रतिबंध लगा दें। इस सम्बन्ध में मेरी अपनी अनुभूति तो यही है पर यह मैं अवश्य अनुभव करता हूं कि अगर सर्वस्व जाता हो तो आधे पर ही संतोष कर लेना चाहिये। इसलिये डा. अम्बेडकर जो प्रस्तुत अनुच्छेद के खंड (क) को संसद के क्षेत्राधिकार के अधीन रखने पर राजी हो गये हैं। यह अच्छा है। पर मैं चाहता यह था कि वह कुछ और आगे बढ़ते और इस समूचे अनुच्छेद को भारत के भावी संसद के क्षेत्राधिकार के अधीन कर देते। न्याय शासन के सम्बन्ध में ब्रिटिश प्रणाली से ही हमने बहुत कुछ अपनाया है अत: मैं उन लोगों में एक हूं जो यह समझते हैं कि न्याय प्रशासन सम्बन्धी व्यवस्थाओं को अधिक लचीली बना कर ताकि वह देश की आर्थिक अवस्था के अनुकूल हो सकें, न्याय प्रशासन में काफी सुधार किया जा सकता है। इंग्लैंड में अपीलों का श्रेणी विभाजन कर दिया गया है और वहां के कानून विज्ञान के अनुसार यह एक स्वाभाविक बात हैं पर इंग्लैंड एक बड़ा धनी देश है और वहां की जनसंख्या कुल चार करोड़ है। तीस करोड़ की आबादी वाले हमारे गरीब देश से कहीं अधिक सम्पत्ति उस देश में हैं अवश्य ही इस बात की गारंटी होनी चाहिये कि हर व्यक्ति की न्याय मिलेगा, हर आदमी के साथ ठीक-ठीक इन्साफ किया जायेगा और उसकी ठीक-ठीक सुनवाई होगी पर समुचित न्याय प्रशासन के लिये यह अनिवार्य नहीं है कि अपीलों का श्रेणी विभाजन किया जाये। अगर गलत न्याय हो गया है, अगर कोई प्रक्रिया सम्बन्धी गम्भीर त्रुटि रह गई है और अगर न्याय के सम्बन्ध में कोई बुनियादी गलती हो गई है तो अवश्य ही देश के उच्चतम

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

न्यायालय को उसमें दखल देना ही चाहिये। प्रान्तों में आखिर कालेजियट कोर्टों की स्थापना क्यों न कर दी जाये जिससे उच्च न्यायालयों का दखल कम हो जाये और उच्चतम न्यायालय केवल ऐसा न्यायालय रहे जहां वही मामले जायें जिनके निर्णय में पहले कहीं गलती रह गई है और वहां वह ठीक कर दी जाये। पर मैं यह नहीं चाहता हूं कि यह सारे सुधार अभी शीघ्र ही कर दिये जायें। मैं जो चाहता हूं वह यह है कि अपीलों के सम्बन्ध में जो वर्तमान उपबंध हैं उनको रहने दीजिये पर उन्हें संसद के अधिकार क्षेत्र के अधीन कर दीजिये ताकि अगर कोई विशेष समिति नियुक्त की जाये और वह न्याय प्रशासन सम्बन्धी व्यवस्था के प्रश्न पर विचार करे तो सभी आवश्यक सुधार देश की न्याय प्रशासन व्यवस्था में चालू किये जा सकें।

माननीय मित्र श्री थीरूमल राव ने वकीलों के विरुद्ध यहां एक कटाक्ष किया है। उनका ऐसा करना सर्वथा अनावश्यक था क्योंकि ऐसे भी वकील हैं जो उदार दृष्टिकोण रखते हैं और स्वहित से अधिक ख्याल रखते हैं समाज के हित का और अनाड़ी लोगों में ऐसे भी आदमी आपको मिलेंगे जो वकीलों से भी ज्यादा कानूनी दांव पेच रखते हैं। मैं तो यह देखता हूं कि जो अनाड़ी हैं कानून नहीं जानते हैं उनमें कानूनी दांव पेच पर भरोसा रखने की प्रवृत्ति जितनी अधिक मात्रा में वर्तमान है उतनी वकीलों में नहीं जो समाज के हित का स्वहित से अधिक ख्याल रखते हैं और दुनिया के समुन्नत विचारों के आधार पर ही चलने का ख्याल रखते हैं इसलिये उनका यह भाषण सर्वथा अनावश्यक था। अनुच्छेद 111 को जो दुर्भाग्यवश हमें यहां लिपिबद्ध करना पड़ा है उसका कारण यह है। अपीलों की बाबत विस्तार की बातों का बिना उल्लेख किये, फेडरल न्यायालय या प्रिवी कौंसिल के क्षेत्राधिकार का यहां सामान्य उल्लेख किया जा सकता था और उसे संसद के क्षेत्राधिकार के अधीन रखा जा सकता था। पर सभा को मालूम ही है कि जब यहां संसद विषयक विशेषाधिकारों की चर्चा चली तो किस तरह का वाद-विवाद चल पड़ा था। अगर आप उस क्षेत्राधिकार पर दृष्टिपात करें जो अब तक भारत के अथवा इंग्लैंड के विभिन्न कानूनों के अधीन प्रिवी कौंसिल को प्राप्त थे, तो सम्भव है आप यह महसूस करें कि इससे सभा की मर्यादा में कमी आ जाती है। इस प्रश्न को लेकर कि इस संविधान में संसद के क्षेत्राधिकार का, उसकी शक्तियों और विशेषाधिकार का उल्लेख करना क्या ठीक है, अभी समाचार पत्रों में और सभाओं के द्वारा बड़ा गंभीर वाद-विवाद चल चुका है पर यह बात मेरी समझ में नही आती है कि आखिर उन्हें और सरल कैसे बनाया जा सकता हैं। अनुच्छेद 111 में वर्तमान व्यवस्था का उल्लेख किया जा सकता है और यह उपबंध रखा जा सकता है कि संसद निर्मित विधि द्वारा इस व्यवस्था में सुधार, संशोधन या परिवर्तन किया जा सकता है। यही कारण है जिनसे प्रेरित होकर डा. अम्बेडकर के संशोधन को मैं स्वीकार कर रहा हूं क्योंकि मैं चाहता यही हूं कि डा. अम्बेडकर कुछ और आगे बढ़ कर यहां यह लिखते कि यह सभी बातें संसद के क्षेत्राधिकार के अधीन रहेगी।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): गत तीन दिनों से श्रीमान्, जब से कि यहां संघीय न्याय मंडल सम्बन्धी अध्याय पर बहस चल रही है मैं एक बड़ी खिन्नता का अनुभव कर रहा हूं। बहस की प्रतिक्रिया मुझ पर यह हुई कि मैं श्रीमती दुर्गाबाई के संशोधन का पहले तो विरोध करना चाहता था पर अब श्री अल्लादी कृष्णास्वामी की वक्तृता

सुनकर तो दिमाग और भी उलझन में पड़ गया और मेरी खिन्नता बढ़ गई। हमारे विदेशी शासकों ने हमारे लिये कुछ भी न छोड़ा। हमारा सारा खून उन्होंने चूस लिया और चन्द वकील हम लोगों में छोड़ गये जो यहां या बाहर न्याय प्राप्ति के लिये कानून का भाष्य करते हैं। बचपन में अक्सर मैं कलकत्ता से गुजरा करता था और वहां के पुराने सचिवालय, राइटर्स बिल्डिंग में न्यायतुला (Scales of Justice) को देखता था। पर यही एक न्यायतुला ही विदेशी शासक यहां छोड़ गये हैं ऐसी कोई व्यवस्था वह नहीं छोड़ गये हैं जिससे वास्तविक न्याय प्राप्त हो सके। मैं नहीं समझ पाता कि मेरे वकील मित्र क्यों ब्रिटिश प्रणाली के अधीन होने वाले न्याय निर्वचन के प्रति इतने मुग्ध हैं। न्याय के सम्बन्ध में जो भारतीय कल्पना है उसके अनुसार इस मध्यवर्त्ती परिवर्तन काल में हम सद्यः सोचना न शुरू कर पाये इसे मैं एक दुर्भाग्य की बात समझता हूं। न्याय के सम्बन्ध में भारतीय कल्पना यह है कि न्याय सत्य पर आधृत होना चाहिये। हमारे पुराने ब्रिटिश शासक, जो न्याय सम्बन्धी निर्वचन यहां विरासत के रूप में छोड़ गये हैं वही अब, चाहे उच्च न्यायालय हो या उच्चतम न्यायालय हो, सर्वत्र प्रयुक्त होंगे। उन सब बातों के कारण श्रीमान्, मैं बड़ी ही खिन्नता का अनुभव कर रहा हूं। मैं चाहता हूं कि इस अध्याय में केवल तीन या चार अनुच्छेद रखे जाते और उनमें ही डाक्टर अम्बेडकर, न्याय व्यवस्था सम्बन्धी सभी बातें इस तरह से रख देते कि हर आदमी को न्याय पाना सुलभ हो जाता। पर हमने जो उपबंध रखे हैं उनके अनुसार तो एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय में अपील की जायेगी और अन्ततोगत्वा उच्चतम न्यायालय में पहुंच कर ही उसका अन्तिम निर्णय हो सकता है। अब माननीय मित्र डा. अम्बेडकर एक या दो और अनुच्छेद जोड़ने का प्रस्ताव रख रहे हैं जिनके अनुसार आपराधिक मामलों की अपील भी उच्चतम न्यायालय में की जा सकती है। ऐसी हालत में जन साधारण को आखिर न्याय कैसे सुगमता से मिल सकता है? जो व्यवस्था यहां रखी जा रही है उनमें क्या किसी को न्याय प्राप्त होगा? इससे तो यही होगा कि एक का पैसा दूसरे के पॉकेट में पहुंच सकेगा। यह कमाई ऐसी नहीं होगी जो उत्पादन मूलक कही जा सके। अगर हमारा पैसा श्री अल्लादी या डा. अम्बेडकर की जेब में चला जाये तो यह कमाई उत्पादन मूलक थोड़े ही कही जायेगी? यह तो अनुत्पादक धन होगा, प्रिवी कौंसिल में अपीलें करके न जाने कितने ही परिवार बरबाद हो गये। उनकी सारी सम्पत्ति उन वकीलों की जेब में पहुंच गई जो प्रिवी कौंसिल में उनके मामले की वकालत कर रहे थे।

आशा है माननीय मित्र डा. अम्बेडकर तथा सभा के अन्य विधि विशारद लोग यहां ऐसी व्यवस्था करेंगे जिसमें बिना खर्च लोगों को न्याय प्राप्त हो सके। ऐसा कीजिये कि मुकदमों में पक्ष प्रतिपादन के लिये वकीलों को आवश्यकता ही न रह जाये और आप देखेंगे कि मुकदमेबाजी बिल्कुल ही कम हो जायेगी। पर मैं नहीं समझता कि इसके लिये कोई भी व्यक्ति प्रयास करेगा। वकीलों का हमारे देश में प्राबल्य है। हम उस वर्ग के प्रति कृतज्ञ है क्योंकि देशभक्तों की प्रथम पंक्ति में यही वर्ग था जिसने हमें यह बतलाया कि स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये हमें किस तरह आन्दोलन चलाना चाहिये। अवश्य ही हम इस वर्ग के प्रति कृतज्ञ हैं। यह विचारकों और विद्वानों का वर्ग है। किन्तु आज मैं इससे इस बात की अपील करूंगा कि सोच विचार कर वह एक ऐसा उपाय सुझावें जिससे न्याय प्राप्ति में खर्च कम लगे। इस विधान में कहीं भी यह प्रावहित नहीं किया गया है कि मुकदमें के खर्च में कमी लानी चाहिये। उस दिन यहां जिस तरह से बहस हुई और जिम्मेदार सदस्यों ने जो यह कहा कि अगर हर आपराधिक ममाले को अपील की

[श्री बी. दास]

उच्चतम न्यायालय में सुनवाई होगी तो उसके लिये सैकड़ों न्यायाधीशों की आवश्यकता होगी, उससे मुझे बड़ी बेचैनी हुई। अगर सत्य के आधार पर ही न्याय होना है तो प्रथम न्यायालय में अथवा दूसरे न्यायालय में जहां उसकी अपील की गई हो, मामले का फैसला हो जाना चाहिये और उससे आगे मामला जाना ही न चाहिये। उच्च न्यायालय के निर्णय पर सन्देह क्यों किया जाये और बार-बार अपील करने का प्रावधान हम क्यों करें? उच्च न्यायालयों में महिलायें भी अब शीघ्र ही न्यायाधीश के रूप में काम करने लग जायेंगी। यह सभी व्यवस्थायें मुझे अशांत कर रही है। एक साधारण नागरिक की हैसियत से मैं यह महसूस करता हूं कि यह न्याय न्याय नहीं है जिसको पाने में परिवार के परिवार बर्बाद और तबाह हो जायें, जो एक ऐसे नये वर्ग का सृजन कर दे जो भारतीय जनता की रोटियों पर जीवन निर्वाह करे। यहां मेरा इशारा वकील-वर्ग की ओर है। न्याय सबको सुगमता से प्राप्त हो सके उसके लिये कुछ न कुछ व्यवस्था करनी ही चाहिये। आज राष्ट्रपिता हमारे बीच नहीं हैं। अगर वकील वर्ग राष्ट्रपिता के प्रति सच्ची वफादारी रखता है तो उसे यहां कोई ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये जिससे न्याय प्राप्ति में कम से कम खर्च बैठे।

मैं ऐसा अनुभव करता हूं कि उच्चतम न्यायालय के काम में संसद को दखल न देना चाहिये। जब हमने उच्चतम न्यायालय रखने का फैसला कर लिया है यद्यपि मैं इसके विरुद्ध हूं कि वहां न्याय पाने में अधिक खर्च बैठे पर इस न्यायालय के पक्ष में हूं। तो हमें यह कोशिश करनी चाहिये कि इस न्यायालय के न्याय का स्तर उच्चतम रहे और संसद उसके कार्य में हस्तक्षेप न करे। आखिर न्याय प्रशासन की हमें क्या जानकारी है, जो उच्चतम न्यायालय के नियंत्रण के लिये हम विधि बनावें? उच्च और उच्चतम न्यायालय के प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों का निर्माण हम क्यों करें? फेडरल पब्लिक सर्विस कमीशन के प्रतिक्रिया सम्बन्धी नियमों को तो हम लोग नहीं बनाते हैं। इस बात के लिये तो हम लोग नियम नहीं बनाते हैं कि भारतीय संसद द्वारा स्वीकृत व्यय को महालेखा-परीक्षक किस तरह नियंत्रित रखेंगे? मेरा कहना यह है कि संसद को आवश्यकता से अधिक संदिग्ध न होना चाहिये और उच्च तथा उच्चतम न्यायालयों के न्यायाधीशों पर उसे किसी अधिकार का प्रयोग न करना चाहिये।

***श्री वी.एस. सर्वटे** (मध्य भारत): अध्यक्ष महोदय, संशोधन नं. 1912 का समर्थन करने के लिये मैं खड़ा हो रहा हूं।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): यह संशोधन तो अभी पेश ही नहीं हुआ है।

***अध्यक्ष:** शुक्रवार को ही यह पेश हो चुका है।

***श्री वी.एस. सर्वटे:** उस संशोधन में यह कहा गया है कि ''except the States for the time being specified in Part III of the First Schedule'' शब्दों को हटा दिया जाये। अपनी बातें केवल इसी संशोधन तक ही मैं सीमित रखना चाहता हूं। खंड का जो

वर्तमान स्वरूप है उसमें यह अनुच्छेद केवल प्रान्तीय उच्च न्यायालयों के सम्बन्ध में लागू हो सकेगा। पर अगर ये शब्द हटा दिये जाते हैं तो प्रदेश सम्बन्धी जो नियंत्रण है वह उठ जायेगा। पर इस सम्बन्ध में मैं बताना चाहता हूं कि केवल इन शब्दों को हटा देना ही अपने प्रयोजन के लिये पर्याप्त नहीं है। इतने से ही उच्चतम न्यायालय को भारतीय रियासतों के उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील की सुनवाई की शक्ति न प्राप्त हो सकेगी। अपने अभिप्राय को समझाने के लिये, संक्षेप में, मैं भारतीय रियासतों की वर्तमान स्थिति कर यहां दिग्दर्शन करा देता हूं। कभी-कभी यह कहा जाता है कि रियासतें बड़ी पिछड़ी हुई हालत में हैं वहां प्राय आज भी आदिम स्थिति ही वर्तमान है। वहां न्याय प्रशासन की कोई व्यवस्था नहीं है—इत्यादि इत्यादि। आमतौर पर सभी रियासतों के सम्बन्ध में जो यह बात कह दी जाती है वह बिल्कुल गलत है और इससे रियासतों की स्थिति के सम्बन्ध में एक गलत धारणा पैदा हो जाती है। प्रथम अनुसूची के भाग तीन में उल्लिखित अधिकांश रियासतों में एक सुव्यवस्थित उच्च न्यायालय वर्तमान है और न्याय प्रशासन की एक सुन्दर व्यवस्था काम कर रही है, परन्तु भारतीय रियासतों का जो विधान है उसके अनुसार रियासतों के उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध कोई अपील प्रिवी कौंसिल में नहीं की जा सकती है। अधिकांश रियासतों में एक न्यायिक समिति नियुक्त कर दी गई थी जो वहां के उच्च न्यायालय से आई हुई अपीलों पर सुनवाई करती थी। यह सच है कि छोटी-मोटी रियासतों में न्याय प्रशासन की वैसी कोई व्यवस्था नहीं वर्तमान है जैसी कि प्रान्तों में है और वहां हाईकोर्ट भी नहीं है। पर वहां नागरिक आसानी से शासक के पास प्रवेश पा जाते थे और इस व्यवस्था से अधिशासी वर्ग पर एक आयंत्रण बना रहता था। अधिकांश मामलों में शासक से फौरन न्याय प्राप्त हो जाता था और इस व्यवस्था से उन प्रदेशों का काम चल जाता था और कुछ प्रदेशों में जहां शासक का अधिकार क्षेत्र सीमित प्रदेश पर था, वस्तुत: इस व्यवस्था से उत्तम न्याय प्राप्त हो जाता था क्योंकि न्याय प्राप्ति में देर नहीं लगती थी। कहा भी है कि न्याय प्राप्ति में देर होना न्याय न मिलने के बराबर है। प्रान्तों में विशेष करके व्यवहार विषयक मामलों में जिस तरह से न्याय किया जाता है उसमें इतना विलम्ब लगता है और इतनी जटिलतायें आती हैं कि उसको लेकर हिन्दी में यह कहावत चल पड़ी है:

जो दिवानी में जाता है वह दीवाना हो जाता है।

इस कहावत से आपको वस्तुस्थिति का सही अन्दाज मिल जायेगा। पर जब से रियासतों को मिला कर संघ बना दिये गये हैं, वहां की हालत बदल गई है। छोटी-मोटी रियासतें तो अब समाप्त कर दी गई हैं और यह होना ही चाहिए था पर यह जरूर है कि जनता को पहले वहां तुरन्त न्याय मिल जाता था और अब न्याय-प्रशासन की कोई भी कार्यकारी व्यवस्था उनके लिये नहीं रह गई है। राज्यों में न्यायिक समितियां स्थापित भी की गई थी पर अधिकांश राज्यों में यह समितियां भी समाप्त हो गई हैं। इसका फल यह हो रहा है कि वहां प्रिवी कौंसिल में अपील नहीं की जा सकती है और उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील की कोई व्यवस्था नहीं है। सो यह त्रुटि जरूर रह गई है। अधिकांश रियासती संघों के विचारशील लोग यह चाहते हैं कि वहां उनके उच्च न्यायालय प्रान्तीय उच्च न्यायालयों के स्तर पर ला दिये जायें और उनके निर्णयों के विरुद्ध अपील करने की व्यवस्था कर दी जाये। अभी हाल में उन्हीं रियासती संघों में से एक में वकीलों

[श्री वी.एस. सर्वटे]

की एक कांफ्रेंस हुई थी जिसमें एक प्रस्ताव द्वारा इसकी सिफारिश की गई थी संघवर्ती उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील की व्यवस्था होनी चाहिए और उच्च न्यायालयों को कार्यपालिका से सर्वथा स्वतंत्र कर देना चाहिये। अब मेरा कहना यह है कि इन शब्दों को हटा देने से यह होगा कि इस अनुच्छेद के आधार पर, प्रान्तीय उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध तो अपील करने की गुंजाइश हो जायेगी पर भारतीय संघ में प्रविष्ट होने वाली रियासतों के उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील न की जा सकेगी। मेरी समझ से तो उसके लिये एक और उपबंध रखना होगा जिससे इन रियासतों के उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सके और इस उपबंध को रखने के तीन रास्ते हैं। अधिकांश रियासती संघों के संघी-पत्रों में एक खंड इस आशय का है कि वहां एक संविधान सभा संगठित की जायेगी। संविधान सभा संविधान में यह प्रावधान कर सकती है कि उनके उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है। एक रास्ता तो यह हो सकता है। दूसरा उपाय यह हो सकता है कि नये संधि-पत्र के अनुसार, जिसके आधार पर रियासतें संघबद्ध हुई है। संसद को ऐसी विधि बनाने की शक्ति प्राप्त है जो सूची 1 में दिये गये विषयों के सम्बन्ध में रियासतों के लिये लागू होंगे। इस सूची में एक विषय ऐसा भी है जिससे न्यायिक न्यायालयों की शक्ति के सम्बन्ध में कानून बनाने का संसद को अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस तरह, इस संधिपत्र के अधीन संसद ऐसा कानून बना सकती है जिसके आधार पर भारतीय संघ में प्रविष्ट होने वाली रियासतों के उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सके। तीसरा उपाय यह हो सकता है कि विधान में ही इसके लिये आप एक प्रावधान रख दीजिये। पर भाग 6, जिसमें कि प्रान्तीय उच्च न्यायालयों की रचना के बारे में व्यवस्था की गई है, वह रियासतों के लिये लागू नहीं होता है। यह कठिनाई जरूर है। इसके लिये भाग 6 के प्रारम्भिक अंश में अर्थात् अनुच्छेद 128 में ''यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो, तो इस भाग में 'राज्य' का अर्थ प्रथम अनुसूची में भाग 1 में उस समय उल्लिखित रहा राज्य होगा'' इस पद संहति में आवश्यक सुधार कर देना होगा ताकि प्रविष्ट राज्यों के उच्च न्यायालयों पर यह भाग लागू हो सके या फिर एक नया भाग रख कर इसी आशय का प्रावधान वहां कर देना होगा।

मैं यह भी बता देना चाहता हूं कि इस संशोधन नं. 1912 के फलस्वरूप अनुच्छेद 113 को हटा देना होगा क्योंकि इसमें, भारतीय संघ में प्रविष्ट होने वाले राज्यों के उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील करने की व्यवस्था रखी गई है और प्रस्तुत संशोधन के पास होने पर इस अनुच्छेद की फिर कोई आवश्यकता न रह जायेगी। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 112 में ''except the States for the time being specified etc.'' जो शब्द आये हैं उन्हें भी हटा देना होगा इस सम्बन्ध में मेरा कहना यह है कि हमें एक ऐसा प्रावधान रखना ही होगा जिसके द्वारा भारतीय संघ में प्रविष्ट रियासतों के उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील करने का अधिकार मिलता हो क्योंकि अनुच्छेद 112 से इन शब्दों को हटा देने मात्र से उच्चतम न्यायालय को ऐसी अपीलों की सुनवाई का अधिकार न प्राप्त हो जायेगा। और अनुच्छेद 113 को हमें हटा देना होगा और उसी तरह का संशोधन हमें अनुच्छेद 112 में भी कर देना होगा।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई:** अध्यक्ष महोदय, डा. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित किये गये संशोधन का मैं समर्थन करती हूं और उसे स्वीकार करती हूं पर इस सिलसिले में विचाराधीन विषय के बारे में मैं चन्द बात कह देना चाहती हूं। प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन में जो सिद्धांत सन्निहित है उससे मेरा पूर्णत: मतैक्य हैं। इसी आशय के एक संशोधन की सूचना मैंने भी दे रखी थी पर उसे मैंने पेश नहीं किया। पर जैसा कि मैंने कहा है, उस संशोधन के पीछे जो सिद्धांत है उससे मैं सर्वथा सहानुभूति रखती हूं। विचाराधीन इस अनुच्छेद में उन सभी शर्तों का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है जिनके पूरा होने पर ही उच्च न्यायालयों के निर्णयों के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है। अवश्य ही सभा जानती है कि इस अनुच्छेद में क्या बातें रखी गई हैं। अनुच्छेद 111 के उपखंड (क), (ख) और (ग) में उन सभी शर्तों का उल्लेख किया गया है। इस अनुच्छेद का प्रभाव यह होता है कि अपील के सम्बन्ध में जो शर्तें रखी गई है। वह संविधान का अंग बन जाती हैं। मुझे विश्वास है कि सभी इससे सहमत होंगे कि अपील के लिये जो व्यवस्था रखी जाये वह ऐसी हो जो लचीली हो। पर इन शर्तों को अगर हम विधान में लिपिबद्ध कर देते हैं, जैसा कि प्रस्तुत अनुच्छेद के उपखंड (क), (ख) और (ग) के द्वारा हमने किया है, तो उससे व्यवस्था में कठोरता आ जाती है और केवल उन शर्तों की पूर्त्ति पर ही अपीलें उच्चतम न्यायालय में की जा सकती हैं। इसलिए मेरे संशोधन का, जिसे कि मैंने पेश नहीं किया, अथवा प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन का अभिप्राय यही है कि इस व्यवस्था में लोच रहने दिया जाये और शर्त्त सम्बन्धी बातों को भावी संसद पर छोड़ दिया जाये और वह अगर नितान्त आवश्यक समझे तो इनके सम्बन्ध में विधि बनावे। इन शर्त की बातों को अगर हम विधान में लिपिबद्ध कर देते हैं और आगे चल यदि इनमें कोई परिवर्तन करने की जरूरत पड़ी तो वह परिवर्तन विधान में संशोधन करके ही किया जा सकता है। इसलिये, मुझे विश्वास है कि सभा कठिनाई को अब समझ गई होगी और उसके ध्यान में यह बात आ गई होगी कि प्रस्तुत संशोधन में जो यह कहा गया है कि इस मसले को भावी संसद पर छोड़ दिया जाये वह इसी अभिप्राय से है कि व्यवस्था में लोच आ जाये और शर्तों के बारे में आगे परिवर्तन किया जा सके।

फेडरल कोर्ट इंलार्जमेंट आफ जुरिसडिक्शन एक्ट, के पास होने के पूर्व, अपील सम्बन्धी शर्तों का अनियमन व्यवहार प्रक्रिया संहिता (Civil Procedure Code) द्वारा अथवा सपरिषद् सम्राट द्वारा निकाले गये आदेशों के द्वारा हुआ करता था। व्यवहार प्रक्रिया संहिता में संसद द्वारा संशोधन किया जा सकता था। इसलिये जिन मित्रों ने यह कहा है कि संसद का हस्तक्षेप इसमें न होना चाहिये, उनको, उत्तर में मैं यह कहूंगी कि यह कोई नई बात नहीं रखी जा रही है और संसद के क्षेत्राधिकार के अधीन जो इन सब बातों को रखा जा रहा है वह कोई नई बात नहीं है, क्योंकि संसद तो पहले भी हस्तक्षेप कर सकती थी और व्यवहार-प्रक्रिया संहिता में जिसके अनुसार कि अपील सम्बन्धी शर्तों का अनियमन होता है, कानून द्वारा संशोधन कर सकती थी। इसलिये यह बहुत ही अच्छा होता श्रीमान्, अगर ऐसी ही व्यवस्था यहां भी अपनाई जा सकती। और फिर मुझे यह भी विश्वास है कि सभा के ध्यान में यह तथ्य भी अवश्य आ गया है कि आज जो स्थिति वर्तमान है वह उससे कहीं भिन्न है जो कुछ साल पहले यहां थी। आज अवस्था सर्वथा बदल गई है क्योंकि हम देख ही रहे हैं कि बहुसंख्यक रियासतें अब भारतीय प्रशासन के अधीन

[श्रीमती जी. दुर्गाबाई]

आती जा रही हैं और यह भी प्रश्न हमारे सामने है कि उच्चतम न्यायालय को एक ऐसा न्यायालय का रूप क्यों न दे दिया जाये जहां देश भर के न्यायालयों की अपीलें अन्तिम रूप से विचारार्थ आवें और फिर यह भी विचार हो रहा है कि इनके अधिकार क्षेत्र को तथा राज्यों के अधिकार क्षेत्र को और भी विस्तृत कर दिया जाये। माननीय मित्र श्री राजबहादुर सिंह ने जो संशोधन रखा है उससे स्थिति स्पष्ट हो जाती है और मुझे विश्वास है सभा उनके संशोधन को स्वीकार करेगी। इस संशोधन का प्रभाव यह होगा कि उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार को जो केवल प्रान्तों तक सीमित रखा गया है, वह बात न रह जायेगी और रियासतें भी उसके अधिकार क्षेत्र के अन्दर आ जायेंगी। इसके पीछे मूल विचार यह है कि उच्चतम न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को और विस्तृत कर दिया जाये और अपील सम्बन्धी शर्तों को संसद पर छोड़ दिया जाये। जो भी हो, डा. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन करने में मुझे बड़ी प्रसन्नता है क्योंकि इसमें मेरे संशेधन के विशेषांश को स्वीकार कर लिया गया है अर्थात् उपखंड (क) और (ख) के सम्बन्ध में मेरी बातें मान ली गई हैं पर केवल (ग) को, विधान में लिपिबद्ध करके व्यवस्था को कुछ कठोर बनाया जा रहा है। इस बात को भी भावी संसद पर छोड़ा जा सकता था। किन अवस्थाओं में अपील उच्चतम न्यायालय के पुनर्विचार के समुपयुक्त हो सकती है, इसके सम्बन्ध में व्यवस्था बनाने का भार संसद पर छोड़ा जा सकता था। जो भी हो डा. अम्बेडकर ने ऐसा करना वांछनीय नहीं समझा। आपने दो बातों को संसद के क्षेत्राधिकार के अधीन रखना तो स्वीकार किया है पर तीसरी बात को संसद के क्षेत्राधिकार से सर्वथा बाहर रखा है। जैसा कि श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने कहा है कि अगर सर्वस्व जाता है तो आधे पर ही संतोष कर लेना चाहिये। मैं भी उनके इस दृष्टिकोण से सहमत हूं और डा. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन करती हूं।

***श्री युधिष्ठिर मिश्र** (उड़ीसा रियासतें): अध्यक्ष महोदय, माननीय सदस्य श्री राजबहादुर सिंह के संशोधन का मैं समर्थन करता हूं जिसमें अनुच्छेद 111 से उस पदसंहति को हटाने की बात कही गई है जिसके रहने से, प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील न की जा सकेगी।

इस संशोधन के समर्थन में संशोधनकर्ता ने जो तर्क पेश किये हैं, उनका मैं समर्थन करता हूं। इसके अलावा, इस सम्बन्ध में एक और बात मैं सभा के सामने उसके विचारार्थ रखता हूं। अगर यह अनुच्छेद इसी रूप में रहता है और भारतीय रियासतों को उच्चतम न्यायालय में पहुंचने पर प्रतिबंध रहता है तो इससे उन रियासतों की स्थिति, जो प्रान्तों में विलीन हो गई, अर्थात् संयुक्त प्रांत, बम्बई, मद्रास, मध्य प्रांत और उड़ीसा आदि प्रदेशों के रियासतों की स्थिति बड़ी विषम हो जायेगी। ये रियासतें पड़ोस के प्रान्तों में मिला दी गई हैं और शासन के प्रयोजन के लिये प्रान्तों का अंग बन गई हैं। वे प्रान्तीय उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अधीन है। विधान के मसौदे में ये प्रथम अनुसूची के भाग तीन में रखी गई हैं और साथ ही मसौदे में यह भी प्रावधान कर दिया गया है कि प्रशासन के लिये ये प्रान्तों का अंग समझी जायेगी। ऐसी हालत में इस अनुच्छेद 111 के रखने से यह होगा कि ये रियासतें उच्चतम न्यायालय में अपील न कर सकेंगी या कम से कम वहां की जनता के दिमाग में इससे गुजंलक तो पैदा होगी ही। इस कठिनाई को दूर करने

के लिये यह जरूरी है कि अनुच्छेद 111 से इन शब्दों को हटा दिया जाये। इसलिये माननीय मित्र श्री राजबहादुर सिंह के संशोधन का मैं समर्थन करता हूं।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): अध्यक्ष महोदय, यहां कई मित्रों ने वकीलों के वर्ग के विरुद्ध बहुत कुछ कहा है।

***अध्यक्ष:** उन बातों के जवाब देने की जरूरत नहीं है। उनको आप छोड़ दीजिये। आप अपनी वक्तृता को कृपया अनुच्छेद और संशोधनों तक ही सीमित रखिये।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** बहुत बहुत अच्छा, श्रीमान्, मैं जो कहना चाहता था वह यह है। संविधान बनाने की जिम्मेदारी वकीलों पर नहीं है बल्कि वह जिम्मेदारी है अनाड़ी नागरिकों पर, संविधान सभा के सदस्यों पर जिनमें ऐसे ही लोगों का बाहुल्य है जो वकील नहीं हैं। सभा के सदस्यों को संविधान विषयक बातों का निर्णय करना है, अपनी सहज बुद्धि के आधार पर। वकील सदस्य तो इसलिये हैं कि वह हमें राय दें। जब किसी मुकदमे का फैसला होता है पंच यानी जुरी के जरिये तो उसमें फैसले की जिम्मेदारी न्यायाधीश और वकील पर नहीं रहती है बल्कि पंच लोग अपनी सहज बुद्धि से जो ठीक समझते हैं निर्णय देते हैं। इसी तरह यहां भी संविधान निर्माण की सारी जिम्मेदारी सभा के सदस्यों की है जिनमें बहुसंख्यक सदस्य ऐसे हैं जो वकालत पेशा के नहीं हैं। इसलिये सभा से मैं कहूंगा कि इस प्रश्न पर वह एक अनाड़ी नागरिक के दृष्टिकोण से ही विचार करे।

अब, एक अनाड़ी नागरिक की हैसियत से जब आप उस प्रश्न पर विचार करते हैं तो क्या पाते हैं? आप यह पाते हैं कि इस अनुच्छेद में एक बहुत बड़ा प्रतिबंध रख दिया गया है और वह प्रतिबंध यह है कि अपील करने के लिये उच्चतम न्यायालय से प्रमाण पत्र प्राप्त करना जरूरी है। आप किसी न्यायालय से सीधे कोई अपील उच्चतम न्यायालय को नहीं कर सकते हैं। जिला न्यायाधीश की अदालत या किसी सब-जज की अदालत के निर्णय के विरुद्ध सीधे उच्चतम न्यायालय को आप अपील नहीं कर सकते हैं। आपको मामले को पहले उच्च न्यायालय में ले जाना ही होगा और उच्च न्यायालय यह प्रमाण पत्र दे दे कि मामला आगे जा सकता है तभी आप उच्चतम न्यायालय में मामले को ले जा सकते हैं। ऐसी सूरत में कोई भी व्यक्ति, चाहे वह अनाड़ी हो या वकील, क्या कभी भी यह कल्पना कर सकता है कि उच्च न्यायालय, जिसके निर्णय के विरुद्ध अपील करनी है वह खुशी से, बिना अपनी जिम्मेदारी का ख्याल किये ऐसा प्रमाण पत्र दे देगा? यह प्रतिबंध एक बहुत बड़ा प्रतिबंध है। मेरी समझ से तो इसके बाद और कोई प्रतिबंध रखना जरूरी नहीं होगा। पर नहीं, इस अनुच्छेद में आपने यह भी रख दिया है कि किन स्थितियों में उच्च न्यायालय प्रमाण पत्र दे सकता है और उच्च न्यायालय पर यह प्रतिबंध लगा दिया है कि इन्हीं अवस्थाओं में वह प्रमाण पत्र दे सकता है। पहला प्रतिबंध तो यह रख दिया गया है कि बिना उच्च न्यायालय से तदर्थ एक प्रमाण पत्र पाये कोई अपील उच्चतम न्यायालय में की नहीं जा सकती और फिर आपने दूसरी पाबंदी यह भी लगा दी है कि मामला अगर अमुक श्रेणियों में आता हो तभी उसकी अपील के लिये प्रमाण पत्र उच्च न्यायालय से मिल सकता है। उतने सारे प्रतिबंधों के रख देने के बाद भी, मैं पूछता हूं, अब जो एक और यह प्रतिबंध आप रख रहे हैं कि अपीलें संसद द्वारा निर्मित विधि के अधीन की जा सकती है, वह क्या समुचित है?

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

ऐसे मामलों में कोई प्रबल आग्रह करूं, इसमें मुझे संकोच बोध होता है क्योंकि श्रीमती जी. दुर्गाबाई जैसे विशिष्ट सदस्य ने उस विचार को यहां अग्रसर किया है और श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने यह कह दिया है कि उनकी उससे पूरी सहानुभूति है। फिर भी मैं इस मसले को सभा के सामने रखने का साहस करता हूं कि वह इस पर विशेष रूप से विचार करे। सभा में ऐसे ही सदस्यों का बहुमत है जो वकील नहीं हैं। सहज बुद्धि से इस प्रश्न पर विचार भी कीजिए और सोचिए तो कि कोई भी न्यायालय जिसके निर्णय के विरुद्ध आप अपील करना चाहेंगे वह क्या कभी बिना समझे बूझे यों ही अपील के लिये प्रमाणपत्र दे देगा? अगर आप यही चाहते हैं कि सब बातें संसद पर छोड़ देनी चाहिये तो फिर इस अनुच्छेद 110, 111 और 112 पर इतना समय क्यों बर्बाद कर रहे हैं? बस इतना ही लिख दीजिये कि प्रक्रिया के सम्बन्ध में और इस बात के बारे में किन-किन सूरतों में उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है, संसद विधि द्वारा प्रावधान कर सकती है। इतना कह देने से ही तो सारी बातें खत्म हो जाती हैं। फिर इन सब अनुच्छेदों–110, 111, 112 और 113 आदि–पर विचार करने में क्यों इतना समय लगा रहे हैं। बस इस आशय का एक अनुच्छेद रख लीजिये कि किन अवस्थाओं में उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है, इसके सम्बन्ध में संसद विधि द्वारा प्रावधान कर सकती है। प्रमाण पत्र के सम्बन्ध में भी आप वैसा ही उल्लेख कर दीजिये जैसा कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता में किया हुआ है। दस हजार के मूल्य का भी उल्लेख वहां है। पर अनुच्छेद 110 और 111 आदि पर विचार करने में इतना समय लगा देने के बाद, मैं तो यह सोचता था कि सभा यह विचार करेगी कि इस प्रस्तावित संशोधन को स्वीकार करना क्या जरूरी भी है।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि इस सरल अनुच्छेद 111 पर, जिसके गुणावगुण पर कोई गंभीर मतभेद नहीं दिखाई देता है, यहां काफी बहस हो चुकी है। उसके रचयिताओं के सम्बन्ध में कुछ भी कहा गया हो पर इस अनुच्छेद में जो व्यवस्था है उसके विरुद्ध कुछ भी नहीं कहा गया है इसलिये मैं सदस्यों से अनुरोध करूंगा कि, जब इसके गुणावगुण पर कोई मतभेद नहीं है तो इस पर और समय वह न लें।

***डा. बक्शी टेकचन्द** (पूर्वी पंजाब : जनरल): इस प्रश्न पर मैं सभा का दो या तीन मिनट से ज्यादा समय नहीं लूगा। प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना ने जो संशोधन रखा है, जिसका समर्थन श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर और श्रीमती दुर्गाबाई ने किया है, वह इतना निर्दोष नहीं है जितना कि वह दिखाई देता है। वस्तुत: इसका बड़ा ही क्रांतिकर प्रभाव पड़ेगा। और यह पास हो जाता है तो संसद को यह अधिकार मिल जायेगा कि जब चाहे व्यवहार विषयक मामलों में उच्चतम न्यायालय को जो क्षेत्राधिकार प्राप्त है, उसे वह छीन ले। इस स्थिति या आशंका को दूर करने के लिये ही तो मसौदा-समिति ने विधान में इस अनुच्छेद को रखना आवश्यक समझा था। अगर इसके आरंभ में आप ''Subject to any law made by Parliament'' ये शब्द जोड़ देते हैं, जैसा कि संशोधन में सुझाया गया है, तो इसका प्रभाव यह होगा कि, संसद जब भी चाहे, प्रिवी कौंसिल के क्षेत्राधिकार को जो कि उसे प्रस्तुत अनुच्छेद के खंड (क) या (ख) अथवा (ग) के या इन तीनों के अंतर्गत आने वाले व्यवहार विषयक मामलों को निबटाने का अधिकार

प्राप्त है, छीन सकती है। मैं कहूंगा यह एक बड़ी ही गम्भीर बात होगी। प्रस्तुत अनुच्छेद 111 के, जिस रूप में कि वह सभा के सामने रखा गया है, प्राय: वही बातें रखी गई हैं जो कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता में रखी हुई है। सच तो यह है कि इसी तरह के प्रावधान यहां प्राय: शताब्दि से अधिक समय तक वर्तमान रहे हैं, उसी समय से जब से कि 1933 का जुडिशियरी एक्ट पास हुआ और प्रिवी कौंसिल उन सभी मामलों की सुनवाई करने लगी जो कलकत्ता, बम्बई या मद्रास के सुप्रीम कोर्ट के निर्णयों के सम्बन्ध में उसके पास जाते थे या आगे चल कर जो मामले कि राजाज्ञा या 1861 के हाईकोर्ट एक्ट के अधीन स्थापिन अन्य विभिन्न हाईकोर्टों के निर्णयों के सम्बन्ध में उसके पास जाने लगे थे। मूल अनुच्छेद 111 में तथा व्यवहार-प्रक्रिया संहिता की 109 और 110 की धाराओं में अन्तर केवल इतना ही है कि प्रस्तुत उपखंड (क) में मूल्य विषयक रकम दस हजार से बढ़ा कर बीस हजार कर दी गई है। डा. अम्बेडकर का संशोधन यहां इतना और बढ़ा देने को कहता है–

''राशि या मूल्य 20 हजार रुपये से या ऐसी राशि से जो संसद इस बारे में विधि द्वारा उल्लिखित करे कम न हो।'' इससे संसद को मूल्य सम्बन्धी राशि को बढ़ाने घटाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। पर इन मामलों में अपील का जो अधिकार है, जिसका प्रावधान कि विधान में किया गया है उसे संसद नहीं छीन सकती है। विधान के प्रावधान के अनुसार, वह शक्ति जो अब तक कि प्रिवी कौंसिल को प्राप्त थी, अब उच्चतम न्यायालय में निहित कर दी गई है। मैं यह कहूंगा कि उच्चतम न्यायालय के इस क्षेत्राधिकार को छीनने की शक्ति संसद को देना समुचित न होगा। यह क्षेत्राधिकार बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है और जैसा कि श्री रोहिणी कुमार चौधरी ने कहा है, नये विधान में यह क्षेत्राधिकार उच्चतम न्यायालय को प्राप्त रहना ही चाहिये। माननीय सदस्य देखेंगे कि अपील का जो अधिकार दिया गया है वह ऐसा नहीं है कि उसमें कोई प्रतिबंध न रखा गया हो ओर जो भी चाहे किसी भी व्यवहार विषयक मामले की अपील उच्चतम न्यायालय में कर दे। इस में कई प्रतिबंध रख दिये गये हैं। पहला प्रतिबंध तो यह है कि उच्च न्यायालय से प्रमाण पत्र मिलने पर ही किसी मामले की अपील आगे की जा सकेगी। जिस मामले में विवाद ग्रस्त विवय की राशि या मूल्य 20 हजार है या उतना है जितना कि संसद द्वारा निर्धारित कर दिया है और उच्च न्यायालय तथा प्रथमवार के न्यायालय में मतभेद है, उसी मामले में अधिकार के रूप में अपील की जा सकती है। फिर उपखंड (ख) द्वारा यह प्रावधान कर दिया गया है, कि जिस मामले में उच्च न्यायालय ने नीचे के न्यायालय के निर्णय का अभिपोषण किया है उसके सम्बन्ध में बतौर अधिकार के अपील नहीं कर सकेगी बल्कि तभी की जा सकेगी जबकि उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि मामले में कोई सारवान् विधि प्रश्न निहित है। पर विधि प्रश्न ऐसा नहीं हो जो अप्रासंगिक या आनुषंगिक हो। उन मामलों में अपील न की जा सकेगी। ऐसी हालत में खंड (ग) को विधान में शामिल करने का विरोध क्यों किया जा रहा है, यह मैं नहीं समझ पाता हूं। इसके अंतर्गत तो वही मामले आयेंगे जिनमें कोई ऐसा आम महत्त्व का प्रश्न सन्निहित है कि उसके निर्णय का प्रभाव बहुत से मामलों पर पड़ता हो या ऐसा कोई मामला है जिसमें कोई विविध प्रश्न अंतर्ग्रस्त है जिसके सम्बन्ध में विभिन्न उच्च न्यायालयों में मतभेद है और उस विवाद के निपटारे के लिये उच्चतम न्यायालय का निर्णय लेना आवश्यक है। और फिर यह भी है कि जिस विशेष उच्च न्यायालय ने उसके सम्बन्ध में पहले निर्णय दिया है, उससे इस आशय का प्रमाणपत्र प्राप्त रहना चाहिये कि

[डा. बक्शी टेकचन्द]

मामला अपील के समुपयुक्त है उतना होने पर ही मामले की अपील उच्चतम न्यायालयों में की जा सकेगी। इस खंड के अधीन बहुत ही कम मामले उच्चतम न्यायालय को जायेंगे। जहां तक मैं जानता हूं वर्तमान में आठ या दस से अधिक मामले यहां के उच्च न्यायालयों से प्रिवी कौंसिल को इस खंड के अधीन नहीं जाते हैं। यह एक बड़ा ही हितकर प्रावधान है और इसे विधान में रहने देना चाहिये। मेरा निवेदन है कि इस अनुच्छेद को डा. अम्बेडकर के संशोधन के साथ, हमें स्वीकार कर लेना चाहिये और प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना का जो संशोधन है उसे हमें अस्वीकार कर देना चाहिये।

***डा. पी.के. सेन** (बिहार : जनरल): अगर अनुमति हो तो चन्द बातें मैं कहूं श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** उन बातों का कहना क्या जारी है?

***डा. पी.के. सेन:** बहुत ही महत्त्वपूर्ण बातें हैं श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** इस मामले में एक न्याय की बात तो मुझे माननी ही होगी। आपका ख्याल है कि आप जो कुछ कहने जा रहे हैं वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

***डा. पी.के. सेन:** मैं संक्षेप में ही बोलूंगा और केवल उन्हीं चन्द बातों के सम्बन्ध में बोलूंगा जिन्हें मैं वस्तुत: महत्त्वपूर्ण समझता हूं। माननीय मित्र प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन का विरोध करने के लिये मैं खड़ा हो रहा हूं। इसका समर्थन श्रीमती दुर्गाबाई तथा अन्य कई माननीय सदस्यों ने किया है और फिर श्री अल्लादी कृष्णास्वामी जैसे अधिकारी कानून विशारद ने भी इसका समर्थन किया है। आप लोगों ने इस बात पर जोर दिया है कि अनुच्छेद 111 को लचीला बनाना चाहिये। पर जिस उपाय द्वारा आप लोग उसमें लचीलापन लाना चाहते हैं उससे तो इस अनुच्छेद का सम्पूर्ण स्वरूप ही बदल जायेगा। लचीली चीज को भी अगर झटके के साथ खींचा जायेगा तो वह टूट जायेगी। यहां इस मसले में जिस रूप में लचीलापन लाने की कोशिश की जा रही है उससे तो इस अनुच्छेद का उद्देश्य ही नष्ट हो जायेगा। उच्चतम न्यायालय को, कतिपय खास तरह के मामलों की अपील की सुनवाई का अधिकार देने के लिये यह अनुच्छेद 111 रखा जा रहा है। अब जैसा कि संशोधन में कहा जा रहा है, अगर "subject to such provisions of law as the Parliament may lay down" ये शब्द अनुच्छेद के प्रारम्भ में जोड़ दिये जाते हैं तो इससे अनुच्छेद का समस्त स्वरूप ही बदल जायेगा। इस संशोधन से संसद को यहां तक शक्ति मिल जायेगी कि वह जब चाहे इस अनुच्छेद को ही हटा दे। अगर इस अनुच्छेद की रचना इस ढंग से की गई होती कि इसमें बहुत अनावश्यक शब्द होते तो एक और बात थी पर इसमें तो वही व्यवस्थायें रखी गई हैं जो व्यवहार प्रक्रिया संहिता (Civil Procedure Code) में हैं और अब तक अमल में रही हैं। इतने लम्बे अर्से तक यह अमल में रही है, इससे यह प्रमाणित हो जाता है कि यह उपयुक्त और हितकर है। इस सम्बन्ध में एक मात्र प्रश्न उठाया जा सकता था विवाद ग्रस्त मामले की अधिकतम राशि या मूल्य के सम्बन्ध में। पर माननीय मित्र डा. अम्बेडकर ने यह संशोधन रख

करके कि अधिकतम राशि बीस हजार की हो या ऐसी कोई राशि हो जो भावी संसद विधि द्वारा प्रावहित करे, उस प्रश्न की भी गुंजाइश नहीं रहने दी। इस दृष्टिकोण से, मुझे तो यही प्रतीत होता है—यद्यपि आपने इसे एक सरल मसला ही बताया है श्रीमान्—कि यह प्रश्न महत्त्व शून्य नहीं हैं कुल मिला कर मूल बात यह आती है कि अपने नये संविधान में जो शक्तियां उच्चतम न्यायालय को दी गई हैं उन्हें आप रहने देना चाहते हैं या उन्हें भावी संसद के ऊपर छोड़ देना चाहते हैं? अगर इस संशोधन को हम आज स्वीकार कर लेते हैं तो यहां अनुच्छेद के आरम्भ में जो शब्द जोड़े जा रहे हैं उनसे वस्तुतः संसद को यह शक्ति प्राप्त हो जायेगी कि आगे जब चाहें वह इसमें कोई भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर दें। इसलिये मेरा निवेदन यह है कि संशोधन का समर्थन करने से पूर्व सभा को इस प्रश्न पर सावधानी से विचार करना चाहिये। मेरी राय में हर व्यक्ति को, जिसे अपने देश की और उसके उच्चतम न्यायालय की भलाई की फिक्र है, इस संशोधन का विरोध करना चाहिये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं आरम्भ में यही बता देना चाहता हूं कि वह मूल बात क्या है जिस पर सभा को विचार करना है और निर्णय करना है। वह मूल बात उठती है दो संशोधनों को लेकर जिनमें से एक को प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना ने पेश किया है और जो संशोधन नं. 1911 का ही प्रतिरूप है ओर दूसरा संशोधन है मेरा जो चौथे सप्ताह की सूची नं. 1 में 25 नम्बर का आता है। इन संशोधनों में जो बातें उठाई हैं उन पर कुछ कहने के पहले मैं एक या दो बातें बता देना चाहता हूं।

पहली बात तो यह कहना चाहता हूं कि यह अनुच्छेद 111 व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा 109 और 110 की हूबहू नकल है। सिवाय उस बात के जिसका कि अपने संशोधन द्वारा सुझाव दे रहा हूं। अनुच्छेद 111 में और व्यवहार प्रक्रिया संहिता की इन दो धाराओं में कोई भी अन्तर नहीं है। इसलिये सभा को स्मरण रहना चाहिये कि जहां तक कि इस अनुच्छेद का सम्बन्ध है इससे उच्च न्यायालय के निर्णयों के विरुद्ध अपील करने की व्यवस्था में कोई भी खास या बुनियादी फर्क नहीं आता है। उस सम्बन्ध में स्थिति वही रहती है जैसी कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता की इन दो धाराओं में दी हुई है।

दूसरी बात मैं यह कहना चाहता हूं कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता की 109 और 110 को धाराओं में ठीक वही शक्तियां ज्यों की त्यों रख दी गई हैं जो शाही सनद के पैरा 39 में दी हुई हैं जिस सनद के आधार पर सम्राट द्वारा प्रेसिडेंसी नगरों के विभिन्न उच्च न्यायालयों की संस्थापना हुई है। उक्त पैराग्राफ 39 में जो कुछ कहा गया है ठीक वही बातें उतार कर ज्यों की त्यों धारा 109 और 110 में रख दी गई हैं।

तीसरी बात जो मैं कहना चाहता हूं वह यह है, यह शाही सनद जारी की गई थी सन् 1862 में। इसमें विधान मंडल को यह अधिकार दिया गया है कि वह शाही सनद द्वारा दी गई शक्तियों में परिवर्तन कर सकता है। जब से शाही सनद जारी की गई तभी से विधान मंडल को उक्त अधिकार प्राप्त रहा है पर केन्द्रीय या प्रान्तीय विधान मंडलों

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

ने उच्च न्यायालयों के निर्णय प्रादेश या अंतिम आदेश के सम्बन्ध में अपील करने के अधिकार में कोई भी परिवर्तन करना कभी उचित नहीं समझा। इसलिये सभा देखेगी कि ये धारायें जिनमें उच्च न्यायालय के निर्णय, प्रादेश या अन्तिम आदेश के विरुद्ध आगे अपील करने का प्रावधान है वह आज प्रायः 75 या 80 वर्षों से अस्तित्व में हैं। उनमें कभी कोई रद्दोबदल नहीं किया गया है और उन्हें ज्यों का त्यों रहने दिया गया है। इसलिये अगर कोई यह कहता है कि उच्चतम न्यायालय की रचना के सम्बन्ध में प्रावधान तैयार करते समय हमें अब उस स्थिति को बदल देना चाहिये जो उतने लम्बे अरसे तक समय की कसौटी पर सदा खरी उतरी है तो मेरी राय में उसे अपने पक्ष प्रतिप्रादन में कोई बहुत ही प्रबल तर्क उपस्थित करना होगा।

मुझे स्मरण है कि अभी कुछ समय पहले जब यह सभा विधान सभा के रूप में समवेत हुआ करती थी, वहां इस बात पर बड़ा जोर दिया जाता था कि भारत शासन अधिनियम के अधीन जिन शक्तियों का प्रयोग प्रिवी कौंसिल करती है, वह अब ज्यों की त्यों बिना किसी कमी के, फेडरल न्यायालय को प्रदत्त कर दी जायें। इसलिये अब जबकि हमने उच्चतम न्यायालय की स्थापना कर ली है, जो फेडरल न्यायालय का ही स्थान ग्रहण करेगा और प्रिवी कौंसिल की शक्तियों का उच्चतम न्यायालय को प्रदत्त कर देने का हमें यह अवसर मिला है, तो इस मौके पर अगर यह कहा जाता है कि शक्तियां ज्यों की त्यों इसी रूप में जिस रूप में कि अब तक थी, उच्चतम न्यायालय को न प्रदत्त कर दी जानी चाहिये, तो यह मुझे बड़ा ही बेतुका मालूम पड़ता है। इसलिये पहली बात तो मैं यह बता देना चाहता हूं कि इस अनुच्छेद से स्थिति में कोई भी खास परिवर्तन नहीं होता है। उच्च न्यायालय और प्रिवी कौंसिल के बीच जो सम्बन्ध अब तक था वही सम्बन्ध, इस अनुच्छेद के द्वारा अब उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के बीच स्थापित कर दिया जा रहा है।

अब श्रीमान्, मैं उन संशोधनों को लेता हूं जिनका जिक्र मैंने आरंभ में किया था अर्थात् प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन नं. 27 को और अपने संशोधन को। अब अगर मेरा संशोधन पास होता है तो उसका नतीजा यह होगा। उच्चतम न्यायालय पुनर्विचार प्रार्थना की सुनवाई करने वाला न्यायालय बना रहेगा और संसद उसकी इस स्थिति में कमी न कर सकेगी। हां संसद को यह अधिकार जरूर रहेगा कि उच्चतम न्यायालय के पास जाने वाली अपीलों की संख्या में वह कमी कर दे या उन अपीलों के स्वरूप में कोई परिवर्तन कर दे। हर हालत में अनुच्छेद 111 का उपखंड (ग) ज्यों का त्यों बना रहेगा और संसद को उसमें कोई रद्दोबदल करने का अधिकार न होगा। मेरा अपना मत यह है कि प्रिवी कौंसिल के पास जाने वाले विवादग्रस्त मामलों की राशि या मूल्य क्या हो, इसे तो हम संसद पर छोड़ सकते हैं, पर अनुच्छेद 111 के खंड (1) का जो अन्तिम पैरा है यानी उपखंड (ग) वह ज्यों का त्यों रहना चाहिये और उसमें कोई रद्दोबदल करने का अधिकार संसद को न प्राप्त रहना चाहिये क्योंकि इसमें विधि का प्रश्न उतना महत्त्व नहीं रखता जितना अधिकार क्षेत्र का प्रश्न। अगर कोई उच्च न्यायालय, उन कारणों के आधार जिन्हें कि हर वकील पेश किया करता है, कि किसी विवादग्रस्त विषय के सम्बन्ध में यह प्रमाणित करता है कि वह विषय उपखंड (क) या (ख) के अन्दर तो नहीं

आता है क्योंकि इसमें सम्पत्ति सम्बन्धी राशि उतनी नहीं जितनी कि अनुच्छेद में निर्धारित है पर फिर भी यह विषय ऐसा है जो उच्च न्यायालय के समक्ष इस कारण से जाना चाहिये कि उसमें जो प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है उसका प्रभाव उस वादी विशेष पर ही नहीं पड़ता है जो कि मामले को लेकर उच्चतम न्यायालय में पहुंचा है बल्कि उसका प्रभाव आम जनता पर पड़ता है। तो मेरे ख्याल में यह क्षेत्राधिकार तो उच्च न्यायालय में सन्निहित रहना ही चाहिये। इसलिये मैं समझता हूं कि उपखंड (ग) को संसद के क्षेत्राधिकार के अधीन हमें न रखना चाहिये।

अगर, प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना का संशोधन पास हो जाता है उससे दो बातें होंगी। एक बात तो यह हो सकती है, जिसकी चर्चा अभी माननीय मित्र बक्शी टेकचन्द ने की है, कि व्यवहार विषयक मामलों में अपीलों की सुनवाई का जो क्षेत्राधिकार उच्चतम न्यायालय को दिया गया है उसे संसद सर्वथा छीन ले सकती है। मेरी समझ से, अगर यह बात होती है तो यह एक बड़ी ही घातक बात होगी। आप देश के लिये एक उच्च न्यायालय की स्थापना करें और संसद को ऐसी शक्ति दे दें जिससे वह, उस न्यायालय के क्षेत्राधिकार को जोकि अपीलों की सुनवाई के सम्बन्ध में उसे प्राप्त है, सर्वथा ही न ले या उसमें कमी कर दे, तो यह बात मेरी समझ से एक बड़े धोखे की बात होगी। इससे अच्छा तो यह होगा कि हम ही साहसपूर्वक यहां व्यवस्था कर दें उच्चतम न्यायालय, व्यवहार विषयक मामलों की अपीलों की सुनवाई करने वाले न्यायालय के रूप में न काम करेगा और फेडरल न्याायालय को जो क्षेत्राधिकार प्राप्त थे वही इसको हम दे दें।

दूसरी बात उनके संशोधन के पास होने से यह होगी कि संसद को अधिकार मिल जायेगा कि वह उपखंड (ग) में रखी हुई व्यवस्था को हटा सकती है, जो कि वहां स्थायी रूप से रहनी चाहिये, जैसा कि मैंने कहा है, क्योंकि वस्तुतः यह क्षेत्राधिकार उच्च न्यायालय में निहित रहना ही चाहिये। इसलिये मेरी समझ से, यहां यह जो दलील दी गई है कि उच्चतम न्यायालय को अपीलों की सुनवाई के क्षेत्राधिकार के लिये जो प्रावधान रखा जाये वह लचीला होना चहिये, वह मेरे संशोधन नं. 25 से पूरी हो जाती है क्योंकि मेरे संशोधन के अनुसार संसद को यह अधिकार प्राप्त रहेगा कि उच्चतम न्यायालय के अपील क्षेत्राधिकार को किसी तरह बिना छीने या उपखंड (ग) में दिये हुए प्रावधान पर बिना असर डाले, वह उपखंड (क) और (ख) के प्रावधानों को अनियमन कर सकेगी। इसलिये श्री सक्सेना के संशोधन का मैं विरोध करता हूं श्रीमान्।

***अध्यक्षः** अब मैं प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन पर राय लेता हूं।

प्रस्ताव यह है:

> ''कि अनुच्छेद 111 के खंड (1) में 'An appeal' शब्दों के पहले 'Subject to any law made by Parliament' शब्द रखे जायें।''

संशोधन अस्वीकृत रहा।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 111 के खंड (1) में 'प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उस समय उल्लिखित रहे राज्यों के अतिरिक्त' (except the States for the time being specified in Part III of the First Schedule) शब्दों को हटा दिया जाये।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 1916 से 1919 तक के संशोधनों के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 111 के खंड (1) के उपखंड (क) में 'बीस हजार रुपये' शब्दों के बाद 'या ऐसी किसी अन्य राशि से जो इसके बारे में संसद विधि द्वारा निर्धारित करे' शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 111 के खंड के साथ निम्नलिखित परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'परन्तु उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश के, अथवा उसके खंड न्यायालय के एक न्यायाधीश के, अथवा उच्च न्यायालय के दो या अधिक न्यायाधीशों के, अथवा उच्च न्यायालय के दो या अधिक न्यायाधीशों से बने खंड न्यायालय के दो या अधिक न्यायाधीशों के किसी निर्णय, आज्ञप्ति या आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील न होगी, जहां ऐसे न्यायाधीश अपनी राय में बराबर बंटें हुए हैं तथा उच्च न्यायालय के तत्समय के सम्पूर्ण न्यायाधीशों में से बहुसंख्यक न हों।''

Provided that no appeal shall lie to the Supreme Court from the judgment, decree or order of on judge of a High Court or of one judge of a Division Court, thereof, or of two or more judges of a High Court or of a Division Court constituted by two or more judges of a High Court, where such judges are equally divided in opinion and do not amount in number to a majority of the whole of the judges of the High Court at the time being.)

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 111 के खंड (2) में, 'इसमें संविधान के निर्वचन का सारवद् विधि प्रश्न अन्तर्हित है जिसका अशुद्ध निर्णय किया गया है' (the case involves a substantial question of law as to the interpretation of this Constitution

which has been wrongly decided) शब्दों की जगह 'संविधान के निर्वचन के एक साखद् विधि प्रश्न का अशुद्ध निर्णय किया गया है' (A substantial question of law as to the interpretation of this Constitution has been wrongly decided) शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 111, अपने संशोधित रूप में, विधान का अंग समझा जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत रहा।

अनुच्छेद 111, संशोधित रूप में, विधान में शामिल किया गया।

***अध्यक्ष:** आपराधिक अपीलों के संबंध में जो संशोधन आये हैं उनके बारे में सर्वोत्तम यह होगा कि पं. भार्गव अपने संशोधन नं. 27 को पहले पेश करें और शेष संशोधन, उस पर संशोधन मान लिए जायेंगे।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): अध्यक्ष महोदय, संशोधन नं. 27 और 28 के संबंध में एक संशोधन की सूचना कल रात को डा. अम्बेडकर ने दी और उनका संशोधन है नं. 190। इस संशोधन में 112-क और ख दोनों ही आ जाते हैं। इसी तरह और अन्य भी बहुसंख्यक संशोधन हैं जो अपील संबंधी प्रश्न से संबंध रखते हैं इन सब पर एक साथ विचार किया जा सकता है ताकि इस प्रश्न का फैसला एक ही बार हो जाये अगर डा. अम्बेडकर इस मसले को बाद में लेना चाहते हैं तो इस संशोधन को अभी स्थगित रखा जा सकता है, मुझे इसमें कोई आपत्ति न होगी। आप इस बात पर विचार कर लें, श्रीमान्, ताकि सभी संशोधनों पर एक साथ विचार किया जा सके और...

***अध्यक्ष:** यही पद्धति तो मैं यहां बरतना चाहता हूं। पर आपको अपना संशोधन तो पेश कर ही देना होगा ताकि और जो संशोधन हैं वह पेश किये जा सकें।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** पर मैं नहीं जानता कि डा. अम्बेडकर कहीं इसे स्थगित तो नहीं रखना चाहते हैं ताकि सभी संशोधनों को देखकर उनके आधार पर एक संशोधन सभा के सामने रखा जा सके। मैंने सभी संशोधनों को पढ़ा है और मैं समझता हूं कि इन सबके पीछे मूल विचार यही है कि एक ऐसा संशोधन रखा जाये जिस पर सभी राजी हो जायें। अगर आप कृपया इन्हें अभी रोक लें तो इस सबका सार लेकर एक संशोधन तैयार कर लिया जायेगा और उसे सभा के समक्ष वाद-विवाद में रख दिया जायेगा।

***अध्यक्ष:** मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है पर संशोधन नं. 28 में एक दूसरी बात कही गई है।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** हां, उसमें एक सर्वथा भिन्न बात कही गई है पर जैसा कि आपने आदेश दिया है वह रुका रहेगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): विधान के मसौदे में जो वर्तमान योजना रखी गई है उससे बिल्कुल भिन्न योजना इन संशोधनों में दी गई है। इसलिये इनको समझने के लिए सभा को कुछ न कुछ समय मिलना चाहिये।

***अध्यक्षः** मुझे कोई आपत्ति नहीं है। यह रुका रह सकता है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिम बंगाल : मुस्लिम): संशोधन नं. 37 भी इसी के संबंध में है।

***अध्यक्षः** वह भी रुका रहेगा। आपराधिक मामलों के निर्णयों के विरुद्ध अपील के संबंध में जो संशोधन आये हैं वह सब अभी रुके रहेंगे।

अनुच्छेद 112

***अध्यक्षः** अब अनुच्छेद 112 को क्या लिया जा सकता है? मैं देखता हूं कि इस अनुच्छेद पर भी कई संशोधन अपीलों के संबंध में आये हैं। इसे भी शायद अभी रोके रखना होगा। और इस अनुच्छेद के उन अंशों पर हम विचार प्रारम्भ कर सकते हैं जिनका आपराधिक अपीलों से संबंध नहीं है।

श्री राम सहाय (मध्य भारत): अध्यक्ष महोदय, मेरा अमेंडमेंट यह है:

> ''कि अनुच्छेद 112 में 'except the States for the time being specified in Part III of the First Schedule in case where the provisions of article 110 or article 111 of this Constitution do not apply' शब्दों को हटा दिया जाये।''

मेरी इस तरमीम के दो भाग हैं यह मेरी तरमीम उन तरमीमों में से एक है जो कि मैंने प्रांतों और स्टेट्स और यूनियन आफ स्टेट्स में जो तफरीक रखी गई है, उनको दूर करने की गरज से पेश की है। इस तरमीम के दो हिस्से हैं।

एक हिस्सा तो वह है जिसमें, सुप्रीम कोर्ट के अधिकार क्षेत्र से यूनियन आफ स्टेट्स और स्टेट्स को बाहर रखा गया है, उसको दूर करने की बात कही गई है। दूसरा हिस्सा वह है जिसमें सुप्रीम कोर्ट के अधिकार को धारा 110 और 111 के संबंध में महदूद् किया गया है। दूसरे हिस्से में, मैं समझता हूं वही बात है जिसे डा. अम्बेडकर ने ड्राफ्टिंग कमेटी की तरफ से 1932 नम्बर को पेश की है। इसलिये मैं समझता हूं कि मेरे इस हिस्से की तरमीम को स्वीकार करने में उनको कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। वह उसको स्वीकार कर लेंगे। मैं समझता हूं कि हाउस इस बात से मुत्तफिक होगा कि इस तरह सुप्रीम कोर्ट के अधिकार को सीमित रखना उचित नहीं है। मेरा ख्याल है, हाउस मेरी इस तरमीम को स्वीकार करेगा।

तरमीम के पहले हिस्से के बारे में मुझे खास तौर से हाउस के सामने अपने ख्यालात रखने हैं और वह इस तरह से हैं। ड्राफ्ट कान्स्टीट्यूशन में स्टेट्स यूनियन आफ स्टेट्स को प्रांतों से बिल्कुल अलग रखा गया है और उनको प्रांत की शक्ल में नहीं माना गया है। डाक्टर अम्बेडकर साहब ने नवम्बर में जब रिड्राफ्ट कान्स्टीट्यूशन का मोशन मूव किया था तो उस वक्त उन्होंने अपना यह ख्याल इजहार किया था कि प्रांतों और स्टेट्स तथा यूनियन्स आफ स्टेट्स में कोई अन्तर नहीं रहना चाहिये। बल्कि उन्होंने यह बात भी कही थी कि स्टेट्स में या यूनियन आफ स्टेट्स में जो कान्स्टीट्यूशन असेम्बली बनने जा रही है, उनको अगर बन्द कर दिया जाये तो ज्यादा अच्छा होगा। मैंने उस समय भी यह बात कही थी कि यह अच्छी चीज है। जिस तरह से यह हाउस बना है और जिस तरह से यह प्रांतों के लिए विधान बना रहा है उसी तरह यह स्टेट्स और यूनियन आफ स्टेट्स के लिये भी विधान बना सकता है। कोई वजह नहीं है कि हम लोग यहां पर बैठकर स्टेट्स के लिए कान्स्टीयूशन में जो जरूरी बातें हम चाहते हैं, वह न रख सकें।

ऐसी तरमीम में कुछ दिक्कतें इन्स्ट्रूमेंट आफ एक्सेसन को या जो गारंटी गवर्नमेंट आफ इंडिया ने कोवनेट आफ स्टेट में की है, उनके संबंध में महसूस की जा सकती है। लेकिन जहां तक मेरा ख्याल है वहां तक ऐसी कोई भी दिक्कत नहीं आ सकती है। इसलिये जहां तक प्रांतों और स्टेट्स यूनियन आफ स्टेट्स को बराबर में लाने का सवाल है, वहां तक इन्स्ट्रूमेंट आफ एक्सेसन से कोई दिक्कत पैदा नहीं होती। खास तौर से सुप्रीम कोर्ट के अधिकार के बारे में तो कोई दिक्कत पेश नहीं होती। क्योंकि जो इन्स्ट्रूमेंट आफ एक्सेसन यूनियन आफ स्टेट्स ने लिखे हैं, उनमें सिवाय टैक्सेशन के तमाम विषयों को केन्द्र के हवाले कर दिया गया है। जब ऐसी शक्ल पैदा हो गई है तो फिर मैं नहीं समझता कि स्टेट्स और यूनियन आफ स्टेट्स के हाई कोर्टों को सुप्रीम कोर्ट के अधिकार क्षेत्र के बाहर रखने का क्या मतलब हो सकता है।

मैंने पहले भी यह निवेदन किया था कि स्टेट्स में भी इस तरह के हाई कोर्ट्स मौजूद हैं जहां पर बहुत काबिल जजेज हैं और प्रांतों के बराबर ही अच्छा काम कर रहे हैं। कोई वजह नहीं मालूम होती है कि वहां की अपील सुप्रीम कोर्ट में न जाये। इसलिये मेरा निवेदन है कि जहां तक इस बात का ताल्लुक है कि स्टेट्स और यूनियन आफ स्टेट्स में जो हाई कोर्टस हैं उन सब की अपील सुप्रीम कोर्ट में आये कोई मतभेद नहीं होना चाहिये और यह बात वहां की जनता के लिये बहुत अच्छी होगी। इस तरह से सुप्रीम कोर्ट का स्टेट्स और यूनियन आफ स्टेट्स की हाई कोर्टों के ऊपर नियंत्रण हो जायेगा तो वहां की जनता के लिए बहुत लाभदायक होगा। अब तक प्रिवी कौंसिल ने इंसाफ से स्टेट्स की जनता को महरूम रखने का जो तरीका था वह भी खत्म हो जायेगा।

जैसा मैंने पहले अर्ज किया, डाक्टर अम्बेडकर साहब ने पहले यह कहा था कि स्टेट्स में कास्टीट्यूयेंट असेम्बली की जरूरत नहीं है। मेरा इस संबंध में निवेदन है कि अभी पिछले नवम्बर में कांस्टीट्यूयेंट असेम्बली के स्टेट्स और यूनियन आफ स्टेट्स के सदस्यों का एक कनवेंशन हुआ था, मैं उसका चैयरमैंन था। उस कनवेंशन ने एक ब्यान (स्टेटमेंट)

[श्री राम सहाय]

दिया था कि प्रांत और स्टेट्स तथा यूनियन आफ स्टेट्स में कोई अन्तर नहीं होना चाहिये। उन लोगों ने इस बारे में स्टेट मिनिस्ट्री से भी गुजारिश की थी और इसके बाद स्टेट मिनिस्ट्री ने ''मॉडल कन्स्टीट्यूशन फार स्टेट्स'' और यूनियन के लिए एक कमेटी बना दी थी। मैं उसका भी एक सदस्य था। उस कमेटी ने स्टेट्स और यूनियन आफ स्टेट्स का उसी तरह से विधान बनाया है जिस तरह से प्रांतों का विधान बनाया गया है। उसमें ऐसा कोई अन्तर नहीं रखा गया है जिससे वह प्रांतों से अलग रह सके। मैं यह भी निवेदन करता हूं कि उसमें धारा एक 63 ऐसी रखी गई है जैसी कि यहां पर धारा 111 है जैसे कि धारा 111 में अपील करने का प्रोवीजन रखा गया है उसी तरह से स्टेट्स और यूनियन आफ स्टेट्स के हाई कोर्ट को भी, सुप्रीम कोर्ट में अपील करने का प्रोवीजन रखा गया है। प्रांतों के गवर्नरों को, प्रेजीडेंट को नोमीनेट करने का अधिकार दिया गया है। यूनियन आफ स्टेट्स में जो राजप्रमुख होंगे उनको प्रेसीडेंट रिकोगनाइज करेगा। मैं समझता हूं कि इसमें कोई विशेष अन्तर नहीं है। मैं समझता हूं कि इस बारे में कोई दो मत नहीं होने चाहिए। यहां रियासतों के जितने प्रतिनिधि आये हैं, वे उसी आधार पर चुने गये हैं जो करीब-करीब प्रांतों के लिए है और फिर वह यहां बैठकर स्टेट्स के और यूनियन आफ स्टेट्स के लिए कानून क्यों नहीं बना सकते? मेरा भी यही मतलब है, जैसा कि मिस्टर अम्बेडकर ने पहले सजेशन में दिया था, कि जो कांस्टीट्यूयेंट असेम्बलियां स्टेट्स में बन रही हैं वह बिल्कुल बेमानी चीज है। मैं यह महसूस करता हूं कि यह बिना वजह पब्लिक मनी को वेस्ट करना है और साथ ही टाइम और इनरजी को वेस्ट करना भी है। क्योंकि जब हम यहां कांस्टीट्यूशन बनाने के लिए बैठे है, तो हम स्टेट्स और यूनियन आफ स्टेट्स के लिए भी कांस्टीट्यूशन बनाने के लिये काम्पीटेंट हैं, और जब हम इस तरह कांस्टीट्यूशन बनायेंगे तो मैं समझता हूं कि इन्स्ट्रूमेंट आफ एक्सेशन की कोई दिक्कत आने वाली नहीं है, क्योंकि हम देख रहे हैं कि हमारे राजप्रमुख जिस तरह काम कर रहे हैं उससे मालूम होता है कि वह हमारी यानी देश की प्रोग्रेस में रोड़ा नहीं बनना चाहते और वह बिल्कुल स्टेट्स मिनिस्ट्री की राय के ही मुताबिक काम करना चाहते हैं। मैं समझता हूं कि अगर स्टेट्स मिनिस्ट्री उनको यह राय देगी कि स्टेट्स में कोई भी कांस्टीटृयूयेंट असेम्बली बनाना बेकार होगा तो वह उस राय से अच्छी तरह इत्तफाक करेंगे और उसे बखूबी स्वीकार कर लेंगे और वहां की जनता तो उसे स्वीकार करने के लिए तत्पर रही है और रहेगी। तो बिना वजह हर एक स्टेट में अलग-अलग कांस्टीट्यूयेंट असेम्बली बनें, इसकी कोई जरूरत नहीं मालूम होती। और खास तौर पर जब कि स्टेट्स मिनिस्ट्री ने स्टेट्स और यूनियन आफ स्टेट्स के लिए माडल कांस्टीट्यूशन का ड्राफ्ट स्टेट्स के नुमायन्दों और एक्सपर्ट के द्वारा तैयार करा लिया है। फिर इसकी कोई जरूरत बाकी नहीं रह जाती।

इस वक्त हाउस के सामने जो सवाल है वह यह है कि आर्टिकल 112 में जो स्टेट्स और यूनियन आफ स्टेट्स को एक्सक्लूड करने के लिए शब्द है और सुप्रीम कोर्ट के अधिकार धारा 110 और 111 के संबंध में सीमित करने के लिये जो शब्द हैं, वे शब्द इस धारा से निकाल देने चाहिये और इसके निकाल देने के बाद जो बाकी धारा रहती है, उसी को हाउस में पास करना चाहिए।

मैं इस विषय में हाउस का ज्यादा वक्त न लेकर सिर्फ इतना ही निवेदन करूंगा कि इसी तरह मेरे अमेंडमेंट के दोनों ही हिस्से काबिल मंजूरी हैं और मैं समझता हूं कि हाउस मेरी पूरी तरमीम को स्वीकार करेगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** नं. 31 का क्या हुआ?

***अध्यक्ष:** पर अब तो निर्णय हो चुका है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** यह संशोधन दूसरा है। यह है चौथे सप्ताह की सूची 1 का संशोधन नं. 31।

***अध्यक्ष:** पर यह निर्भर करता है नं. 1930 पर जो पेश ही नहीं किया गया। नं. 1932 भी पेश नहीं किया गया है। पर वाद-विवाद के सिलसिले में आप अनुच्छेद पर बोल सकते हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, विधान का यह अनुच्छेद एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद है। अगर उच्चतम न्यायालय की आप व्यवस्था करते हैं तो उसे उच्चतम शक्तियां भी प्राप्त रहनी चाहियें। इस अनुच्छेद में यह कहा गया है।

''उच्चतम न्यायालय स्वविवेक से भारत राज्य क्षेत्रान्तर्वर्ती किसी न्यायालय अथवा धर्माधिकरण द्वारा किसी वाद अथवा विषय में दिए हुए किसी निर्णय, प्रादेश अथवा अन्तिम आदेश की अपील के लिए विशेष अनुमति अनुदान कर सकेगा।'' इस अनुच्छेद के अनुसार उच्चतम न्यायालय, किसी भी निर्णय के विरुद्ध की गई किसी अपील पर विचार कर सकता है। मैं इतना ही चाहता हूं कि अपीलों की सुनवाई की जो शक्ति उसे दी जा रही है उसमें और वृद्धि कर दी जाये। जो वर्तमान व्यवस्था है उसके अनुसार उच्चतम न्यायालय अपीलों की सुनवाई तो कर सकता है पर उनके संबंध में उसे निर्णय करना होगा देश के कानून के अनुसार। निर्णय देने में इन कानूनों की हद से आगे वह नहीं जा सकता है। पर मैं चाहता यह हूं कि उन मामलों में जहां प्राकृतिक न्याय का प्रश्न निहित हो, उच्चतम न्यायालय को ऐसा निर्णय देने की शक्ति प्राप्त रहनी चाहिये जो भले ही विधि-संगत न हो पर न्यायसंगत हो। ऐसे मामलों में न्याय की दृष्टि से जो भी निर्णय अपेक्षित हो, वैसा निर्णय देने की शक्ति उसे प्राप्त रहनी चाहिये। आज भी, इस तरह की अपीलों की प्रिवी कौंसिल सुनवाई करती है। उन मामलों की अपील पर जहां प्राकृतिक न्याय का प्रश्न निहित है, प्रिवी कौंसिल सुनवाई करती है और ऐसा निर्णय देती है जो देश के कानून से संगत नहीं होता है। इसलिए मैं यह चाहता हूं कि इस अनुच्छेद 112 में, जहां हम उच्चतम न्यायालय को किसी भी अपील की सुनवाई की शक्ति देते हैं, हमें उसे यह भी शक्ति देनी चाहिये कि विधि शास्त्र के मूलभूत सिद्धांतों की दृष्टि से, प्राकृतिक न्याय की दृष्टि से, उन अपीलों पर निर्णय अपेक्षित हो वह दे। इसीलिये मैंने अपने संशोधन की सूचना दी थी जिसे अब मैं पेश नहीं कर सकता। पर मैं आशा करता हूं सभा इस बात पर भी विचार करेगी। मैं यह भी बता देगा चाहता हूं कि अनुच्छेद 111 पर जो संशोधन मैंने रखा है वह इसी विचार से रखा था कि उच्चतम न्यायालय को हर तरह की अपील पर, चाहे वह व्यवहार विषयक मामलों के संबंध में हो या आपराधिक

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

मामलों के संबंध में हो, सुनवाई की शक्ति रहनी चाहिये। अगर यह शक्ति उसे अनुच्छेद 112 के द्वारा मिलती है तो फिर अनुच्छेद 111 (1) (ग) की कोई जरूरत नहीं रह जाती है क्योंकि उच्चतम न्यायालय को स्वविवेक से अपीलों पर सुनवाई करने की शक्ति प्राप्त है। आशा करता हूं कि डा. अम्बेडकर उच्चतम न्यायालय की शक्ति के दायरे को और भी बढ़ा देंगे ताकि जिन मामलों में प्राकृतिक न्याय का प्रश्न निहित हो, उनमें विधि-व्यवस्था से आगे जाकर न्यायसंगत निर्णय दे सके।

***काका भगवन्त राय** (पटियाला तथा पूर्वी पंजाब राज्य संघ): सदर मोहतरम, मैं अपने मोहतरम साथी श्री राम सहाय जी की तरमीम की ताईद करने आया हूं। आज जो छोटी रियासतों को मिलाकर बड़ी यूनियन्स की शक्ल दे दी गई है तो अब वह एक सूबा की हैसियत रखती है और ऐसा करने से रियासतों के लोग राजाओं के शख्स राज से छुटकारा पा गये हैं।

अब रियासतों की दु:खी जनता बहुत उम्मीद और फख्र से इस आगस्ट असेम्बली की तरफ देखती है कि जब कि एक आज़ाद हिन्दुस्तान का विधान बनाया जा रहा है, इस वक्त रियासतों की आम जनता में और हिंदुस्तान के सूबों की जनता में कोई फर्क नहीं रखा जायेगा। मगर यह जो फर्क रखा गया है कि सुप्रीम कोर्ट में रियासतों की जनता को अपील करने की इजाजत नहीं होगी, मैं समझता हूं कि यह रियासतों के लोगों के साथ बड़ी बेइन्साफी होगी। जब कि तमाम सूबों को यह हक दिया जा रहा है, मेरे ख्याल में रियासतों की जनता को भी यह हक होना चाहिए। और मेरा तो यह ख्याल है और यह राय है कि जो यूनियन्स नई बनी हैं यह हिंदुस्तान का एक अहम हिस्सा है और जब तक यह रियासती यूनियन्स मजबूत नहीं होगी हिंदुस्तान मजमूई तौर पर मजबूत नहीं होगा।

इसलिए हिंदुस्तान को मजमूई तौर पर मजबूत करने के लिए रियासतों को वही हक होने चाहिए, जो कि दीगर सूबों के आम लोगों को दिये जा रहे हैं। इसलिये मैं तो यह समझता हूं कि आप जो एक आजाद हिंदुस्तान का विधान बना रहे हैं तो इसमें कोई भी क्लाज ऐसा नहीं होना चाहिये कि रियासत के लोगों को अलहिदा हैसियत दी जाये। रियासतों के लोग इस आगस्त असेम्बली की तरफ बहुत उम्मीद से देखते हैं। रियासती यूनियनों की जनता और सूबों की जनता के हकूक एकसा होंगे और कोई फर्क न रखा जायेगा। और मुझे उम्मीद है कि आप इस अमेंडमेंट को कबूल फरमायेंगे।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा** (संयुक्त प्रांत): अध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 112 के प्रावधान बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं और व्यापक हैं। इसमें एक महत्त्वपूर्ण सांवैधानिक सिद्धांत लिपिबद्ध किया गया है जो यह है। भारत-शासन अधिनियम की योजना में कार्यपालिका (Executive) ही सर्वेसर्वा थी, विधान मंडल और न्यायपालिका उसके अधीन थे। पर इस अनुच्छेद के द्वारा न्यायपालिका को, विधान मंडल और कार्यपालिका के समान ही गौरव, उससे किसी भी तरह कम नहीं किया गया है। इस तरह का प्रावधान, भारत शासन अधिनियम 1935 में रखा ही नहीं गया है। इसलिये, विधान के यह जो प्रावधान हैं वह व्यापक है और आवश्यक

भी हैं। इससे देशवासियों की बड़ी भलाई होगी; इससे उनको यह अधिकार मिल जाता है कि कार्यपालिका की कार्रवाइयों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालयों में अपील कर सकते हैं, उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध वहां अपील कर सकते हैं। इस अनुच्छेद में प्रावधानों का मैं समर्थन करता हूं, श्रीमान्, इस अनुच्छेद के द्वारा उच्चतम न्यायालय को न्याय करने की बड़ी शक्ति प्राप्त हो जाती है। विधान में ऐसे प्रावधानों के रहते हुए मैं इस बात का कोई औचित्य या आवश्यकता नहीं देखता कि आपराधिक मामलों की अपील का भी प्रावधान कर दिया जाये। मृत्यु दंड के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार रहना चाहिये इस प्रश्न को लेकर यहां बहुत कुछ कहा गया है। पर मैं सादर यह बात कहूंगा कि इस संबंध में यहां जो कुछ भी कहा गया है उसमें एक आधारभूत सिद्धांत की सर्वथा उपेक्षा की गई है। वह सिद्धांत यह है कि मृत्युदंड के निर्णय के विरुद्ध अपील का जो विषय है उसमें न केवल अपराधी या मृत्युदंड प्राप्त व्यक्ति की स्वतंत्रता का ही प्रश्न निहित है बल्कि एक और भी प्रश्न निहित है और वह प्रश्न है राज्य के स्थायित्व तथा देश में शांति का। राज्य के विरुद्ध किये गये अपराधों में निर्णय को आप एक दीर्घकाल तक नहीं टालते जा सकते। ऐसा करना राज्य के लिए घातक होगा। राज्य की स्थिरता और देश की शांति का बिना कोई ख्याल रखे, व्यक्ति के जीवन और उसकी स्वतंत्रता को ही सर्वोपरि समझने का जो सिद्धांत है वह बड़ा ही हानिकारक है। ये दोनों ही बातें जरूरी हैं। व्यक्ति के स्वातंत्र्य का, उसके जीवन का हमें ख्याल रखना ही होगा, उसकी फिक्र करनी होगी पर उसी हालत में जबकि उसने राज्य की स्थिरता में और देश की शांति में आघात न पहुंचाया हो, कोई संकट न पैदा होता हो। और अगर इन दोनों बातों—राज्य का स्थैर्य और व्यक्ति स्वातंत्र्य—का ख्याल रखना है और उनका ख्याल रखते हुए हमें आपराधिक विधियों का प्रशासन करना है तो मैं कहूंगा, श्रीमान्, कि अपने इस अनुच्छेद में, इन दोनों के लिए ही पर्याप्त संरक्षण की व्यवस्था है। चाहे व्यवहार विषयक मामला तो या आपराधिक मामला हो, दोनों में व्यक्ति के प्रति समुचित न्याय हो सके, इसकी पूर्ण सुनिश्चित व्यवस्था इस अनुच्छेद में है। मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं, श्रीमान्।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद 112 के संबंध में मैं एक या दो बातें कहना चाहता हूं। यह अनुच्छेद असाधारण रूप से व्यापक है। इसमें 'किसी वाद अथवा विषय' (in any cause or matter) शब्द रखे गये हैं और मैं समझता हूं कि यह व्यवस्था उससे सर्वथा भिन्न है जो कि देश के प्रचलित कानून के अनुसार अब तक बरती जाती थी। इस समय तो शायद राजस्व-विषयक क्षेत्राधिकार, सभी प्रांतों में एक मात्र उच्च न्यायालयों तक ही सीमित हैं और प्रिवी कौंसिल का इससे कोई संबंध नहीं है। पर हमारा उच्चतम न्यायालय तो सर्वशक्ति सम्पन्न होगा, जहां तक कि एक माननीय न्यायालय हो सकता है और इसके समक्ष सभी तरह के मामले पहुंचेंगे। मैं समझता हूं अन्य क्षेत्राधिकार प्राप्त जो दूसरे न्यायालय होंगे उनके मामले भी इसके पास पहुंचेंगे। उदाहरणार्थ अगर यहां कोई अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय बैठा तो उसका मामला, या यहां के फौजी न्यायालय, उद्योग-धंधा संबंधी न्यायालय, आयकर संबंधी न्यायालय और रेलवे पंचायत, इन संबंधी न्यायालयों के विभिन्न मामले उच्चतम न्यायालय के सामने पहुंचेंगे। इसलिए यह निश्चित कर लेना आवश्यक है कि उसके क्षेत्राधिकार की क्या परिधि होगी और इस तरह के मामलों में उच्चतम

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

न्यायालय क्या करेगा। मेरा अपना विनम्र मत तो यह है कि यह अनुच्छेद 112 हमें इस अप्रिय एवं बहुनिंदित राजनैतिक सिद्धांत का कि ''राजा को ईश्वरीय अधिकार प्राप्त है'' स्मरण दिला देता है। पर साथ ही यह भी बात है कि इस अनुच्छेद के क्षेत्राधिकार का जो स्वरूप है वह ईश्वरीय है क्योंकि मैं समझता हूं उच्चतम न्यायालय ऐसा कोई भी निर्णय दे सकेगा जिससे राज्यों के पारस्परिक मामलों में या नागरिकों के मामलों में पूर्ण न्याय मिल जाता हो। अनुच्छेद 118 को अगर आप देखें तो उसमें यह कहा हुआ है:

> ''अपने क्षेत्राधिकार के प्रयोग में उच्चतम न्यायालय ऐसा प्रादेश अथवा ऐसा आदेश दे सकेगा जैसा कि इसके समक्ष लम्बमान किसी वाद अथवा विषय में पूर्ण न्याय करने के लिए आवश्यक हो, और इस प्रकार दिया हुआ प्रादेश अथवा आदेश भारत के समस्त राज्यक्षेत्र में ऐसी रीति से प्रवर्तनीय होगा जैसी कि संसद किसी विधि द्वारा अथवा अधीन, विनिधान करे।''

यह बहुत उत्तम है। मेरा विनम्र कथन यह है कि प्रिवी कौंसिल अंग्रेजों की चीज थी, हम पर अंग्रेजों की जो न्यायिक प्रभुता थी उसकी वह एक जीती जागती तस्वीर थी। पर उसे भी बड़ी व्यापक शक्तियां प्राप्त थी और वह भी नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के आधार पर न्याय किया करती थी। यह नैसर्गिक न्याय क्या है? प्रिवी कौंसिल का कहना है कि नैसर्गिक न्याय कानून से ऊंची चीज है, उसका महत्त्व विधि से बड़ा है। अपने उच्चतम न्यायालय के संबंध में मैं यही सोचना चाहता हूं कि वह विधि से बड़ा है। इस अर्थ में कि उसे इसका पूरा अधिकार रहेगा कि जैसा कि आदेश देना वह समुचित समझे दे। इस दृष्टिकोण से, सभा के समक्ष मैं यह कहूंगा कि यह अनुच्छेद एक महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद है और इससे उच्चतम न्यायालय को असीम शक्तियां प्राप्त हो जाती हैं। हमें राजनैतिक स्वराज्य प्राप्त हो चुका है और साथ ही अब न्यायिक स्वराज्य भी अवश्य ही प्राप्त है। अनुच्छेद 110 और 111 में अपील सुनने का सर्वांगीण अधिकार उसे प्राप्त है पर विशेष मामलों में उसे एक विशेष क्षेत्राधिकार भी स्वत: प्राप्त है। अपील-विषयक अधिकार न रहने पर भी, उच्चतम न्यायालय उसमें हस्तक्षेप कर सकता है अगर न्याय के लिए यह अपेक्षित हो। इसलिये मैं यही समझता हूं कि उच्चतम न्यायालय इन सभी शक्तियों का प्रयोग करेगा और किसी नियम या विधि के कहने पर अथवा कार्यपालिका की किसी प्रथा या उसके आदेश के कारण वह न्याय करने से डिगेगा नहीं। इस तरह इस अर्थ में उच्चतम न्यायालय विधि से ऊपर रहेगा। मैं यह चाहता हूं जो क्षेत्राधिकार प्रिवी कौंसिल को प्राप्त था वही क्षेत्राधिकार और विस्तृत रूप में उच्चतम न्यायालय को प्राप्त रहना चाहिये और विधि की किसी व्यवस्था के कारण उसका क्षेत्राधिकार कदापि किसी तरह सीमित नहीं होना चाहिये।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद के द्वारा उच्चतम न्यायालय को जो व्यापक और प्रचुर क्षेत्राधिकार दिया जा रहा है उसे समझ लेना जरूरी है। भारत राज्य क्षेत्रान्तर्गत किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा किसी वाद या मामले में

पास किये गये हर आदेश पर विचार करने का उसे अधिकार है। और फिर अपने क्षेत्राधिकार के प्रयोग में उसे यह स्वतंत्रता है कि वह अपने नियम और रूढ़ियों को चलन में लाये। जब हम किसी अनुच्छेद की रचना में अन्य किसी विधि में प्रयुक्त की हुई भाषा को बिठाते हैं तो उसमें हमें एक बड़ी कठिनाई आती है। न्यायिक समिति ने तो कुछ विभिन्न ऐतिहासिक कारणों से अपने ऊपर कुछ प्रतिबंध आरोपित करने के लिए इस पद-संहति विशेष का प्रयोग किया था। पर इन शब्दों को अपने अनुच्छेद में बिठाने से, प्रयोजन न रहने पर भी प्रतिबंध का आशय आ जाता है।

जहां तक कि इस देश का संबंध है, उच्चतम-न्यायालय अपने क्षेत्राधिकार के अनियंत्रित प्रयोग के लिए जैसा चाहे, नियम या रूढ़ियां चलने में ला सकता है, उसे कोई रुकावट नहीं है। न्यायिक समिति (Judicial Committee) ने अपने ऊपर जो प्रतिबंध आरोपित कर रखा था उसके पीछे यह सिद्धांत था कि सम्राट ही न्याय का प्रधान स्रोत है। पर हर आपराधिक मामले में वह न्याय करे ऐसी व्यवस्था समाज के लिए हितकर न होगी। इस अनुच्छेद 112 के अधीन, उच्चतम न्यायालय को अपने क्षेत्राधिकार के प्रयोग के संबंध में ऐसे किसी प्रतिबंध को आरोपित करने की आवश्यकता नहीं है। उदाहरण के लिए, किसी भी आपराधिक मामले में जहां अन्याय हो गया है या न्यायालय ने भ्रमवश गलत निर्णय दे दिया है, या विधि-विषयक कोई गंभीर भूल हो गई है वहां उच्चतम न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है और उसके ऐसा करने पर कोई रोक नहीं है, विधान के रचियताओं ने जान बूझकर यह सावधानी बरती है कि आपराधिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग में कोई प्रतिबंध उच्चतम न्यायालय पर इस अनुच्छेद द्वारा न आरोपित होने पावे। उच्चतम न्यायालय में कोई विशेष आपराधिक क्षेत्राधिकार निहित किया जाये या नहीं, जब हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे तो उस पर, इस वर्तमान बहस का, आशा है, महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा। इस अनुच्छेद 112 द्वारा कितना व्यापक क्षेत्राधिकार उच्चतम न्यायालय को प्राप्त हो जाता है, उसे अगर हम समझ भर लें और उच्चतम न्यायालय केवल इतना कर सके, जिसका कि मुझे पूरा विश्वास है वह अवश्य करेगा, कि देश की अवस्था के अनुरूप, जैसा उसे समुचित प्रतीत होता हो अपनी न्याय व्यवस्था को यहां चलन में लावें तो उच्चतम न्यायालय अपनी एक न्याय व्यवस्था इस तरह से प्रचलित कर सकता है कि उससे हर तरह के वाद या मामले में पूर्ण न्याय वह कर सकेगा। उच्चतम न्यायालय को ऐसा करने में कोई रुकावट नहीं आ सकती है।

इन शब्दों के साथ, अनुच्छेद 112 का, जिस रूप में कि यह है, मैं समर्थन करता हूं।

***श्री एच.वी. पातस्कर** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, उच्चतम न्यायालय को विशेष क्षेत्राधिकार देने के उद्देश्य से ही, अनुच्छेद 112 को विशेषरूप से संविधान में लिपिबद्ध किया गया है। माननीय मित्र पं. ठाकुरदास भार्गव से यह शिकायत सुनकर कि इस अनुच्छेद द्वारा आवश्यकता से अधिक विस्तृत क्षेत्राधिकार उच्चतम न्यायालय को दिया जा रहा है, मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। अनुच्छेद में कहा गया है कि: ''उच्चतम न्यायालय, स्वविवेक से किसी न्यायालय या न्यायधिकरण द्वारा किसी वाद अथवा विषय में दिये हुए किसी निर्णय, प्रादेश अथवा अन्तिम आदेश,... इत्यादि।''

[श्री एच.वी. पातस्कर]

अवश्य ही यहां, 'किसी वाद अथवा विषय' शब्द ऐसे हैं कि कोई भी मामला चाहे वह व्यवहार विषयक हो, आपराधिक हो, राजस्व संबंधी हो अथवा और किसी तरह का हो इसके अन्दर आ जाता है। राजस्व विषयक क्षेत्राधिकार का विशेष रूप से जो उल्लेख पं. भार्गव ने किया है, इससे मुझे यह प्रतीत हो रहा है कि वह यह आवश्यक नहीं समझते हैं कि उच्चतम न्यायालय ऐसी स्थिति में हो कि खास-खास सूरतों में भी राजस्व संबंधी मामलों के निर्णय पर वह पुनर्विचार करे। राजस्व के संबंध में अपने पूर्ववर्ती शासन ने जो अधिनियम पास किये हैं और जो कि अभी चालू हैं उनके प्रशासन के इतिहास पर अगर आप ध्यान दें और उन ममालों को देखें जिनमें कि बड़ा अन्याय हुआ है तो आपकी समझ में यह आ जायेगा कि जब हम देश में उच्चतम न्यायालय जैसे महान न्यायालय की स्थापना करने जा रहे हैं तो विधान में हमें ऐसी व्यवस्था कर देनी चाहिये कि उस न्यायालय को यह शक्ति प्राप्त रहे कि राजस्व विषयक मामलों में भी जहां कि अन्याय हुआ है, वह अपील करने की विशेष रूप से अनुमति दे सके। हमारे अपने प्रांत में राजस्व क्षेत्राधिकार अधिनियम (Jurisdiction Revenue Act) प्रवर्तन में है, जिसके विरुद्ध वर्षों सभाओं और समाचार पत्रों द्वारा बड़ा आंदोलन चल चुका है क्योंकि यह अधिनियम ही कार्यपालिका ने इस उद्देश्य से बनाया था कि न्यायालय को राजस्व विषयक क्षेत्राधिकार न प्राप्त रह जायें। अवश्य ही अब हम देश को उच्चतम न्यायालय की स्थापना की व्यवस्था कर रहे हैं तो उसे यह विशेष क्षेत्राधिकार भी दें कि सभी मामलों में चाहे वह व्यवहार विषयक हों, आपराधिक हों, राजस्व संबंधी हों, वह अपील की अनुमति दे सकती है। यह हम इसलिए कह रहे हैं कि उच्चतम न्यायालय का हमारे देश में वही स्थान होगा और उसके वही प्रकार्य होंगे जो कि और देशों में सम्राट का हुआ करता है। जिसे न्याय का प्रधान स्रोत माना जाता है। हमारे देश में कोई सम्राट है नहीं, इसलिए हमें एक न एक ऐसा कोई स्वतंत्र निकाय रखना ही होगा जो न्याय प्रशासन का संरक्षक रहे और यह देखे कि व्यवहार विषयक आपराधिक या राजस्व संबंधी सभी मामलों में नागरिकों को पूर्ण न्याय प्राप्त हो रहा है। इस दृष्टि से, श्रीमान्, जब हम उच्चतम न्यायालय के लिए प्रावधान कर रहे हैं तो यह भी जरूरी है कि इस अनुच्छेद द्वारा उसे विशेष शक्तियां प्रदत्त कर दी जायें।

ऐसा करने का एक और कारण है। उच्चतम न्यायालय किसी भी मामले में अपील की विशेष अनुमति तभी देगा जब कि उसे यह निश्चित हो जाये कि उसमें न्याय प्रशासन संबंधी किसी सिद्धांत को भंग किया गया है या किसी ऐसे सिद्धांत को भंग किया गया है जिससे न्याय-प्रशासन के मूल उद्देश्य पर ही कुठाराघात होता है। मेरी समझ से अनुच्छेद 112, जिस रूप में कि यह है, बहुत ही समुचित अनुच्छेद है और इसे विधान में स्थान मिलना ही चाहिए।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं नही समझता हूं कि मेरे लिए कुछ अब भी कहना जरूरी है।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 112 के 'except the States for the time being specified,

in Part 3 of the First Schedule, in cases where the provision of articles 110 and 111 of this constitution do not apply' इन शब्दों को हटा दिया जाये।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 112 को, संशोधित रूप में, विधान का अंग माना जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 112, संशोधित रूप में विधान में शामिल किया गया।

नवीन अनुच्छेद 112-क

***अध्यक्ष:** एक नवीन अनुच्छेद को प्रस्तावित करने की सूचना डा. अम्बेडकर ने दे रखी है। उनका संशोधन नं. है 191-क।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन में 1932 के संबंध में, अनुच्छेद 112 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद जोड़ा जाये:

''*112-क निर्णय या आदेश पर उच्चतम न्यायालय का पुनरीक्षण का अधिकार:-* संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि के बंधनों के अथवा इस संविधान के अनुच्छेद 121 के अधीन बनाये गये किसी नियम के अधीन रहते हुये उच्चतम न्यायालय को अपने द्वारा दिये गये निर्णय या आदेश पर पुनरीक्षण करने का अधिकार होगा।''

विधान का मसौदा, जिस रूप में कि वह हमारे सामने है, श्रीमान्...

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** एक औचित्य प्रश्न है, श्रीमान्, संशोधन नं. 1932 तो पेश ही नहीं किया गया है।

***अध्यक्ष:** हां, वह नही पेश हुआ है। इसे मैं एक नये अनुच्छेद के रूप में ले रहा हूं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं यह बता दूं, श्रीमान्, कि संशोधन नं. 1933 ठीक वैसा ही है जैसा कि संशोधन नं. 1928। अगर संशोधन नं. 1928 पेश हो चुका है तो संशोधन नं. 1932 पेश ही नहीं किया जा सकता।

***अध्यक्ष:** मैं कह चुका हूं कि इसे एक नये अनुच्छेद के रूप में लिया जा रहा है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** विधान के मसौदे में ऐसा कोई प्रावधान नहीं रखा गया है जिसके आधार पर उच्चतम न्यायालय अपने दिये गये निर्णयों पर पुनरीक्षण कर सके। यह एक बहुत बड़ी कमी रह गई थी। इसलिए, इस नये अनुच्छेद द्वारा पुनरीक्षण की शक्ति उच्चतम न्यायालय को देने का प्रस्ताव किया गया है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): मुझे यह आशंका है, श्रीमान्, कि इसकी रचना वैसी नहीं है जैसी कि होनी चाहिए थी। पहली बात तो यह है कि मेरी समझ से यह ठीक नहीं है कि संविधान में कोई अनुच्छेद रखकर उसके द्वारा उच्चतम न्यायालय को एक शक्ति दी जाये और फिर यह भी कहा जाये कि वह शक्ति स्वत: उच्चतम न्यायालय द्वारा बनाये गये नियमों के अधीन सीमित रहेगी। उच्चतम न्यायालय को अगर आप कोई शक्ति दे रहे हैं वह ऐसी होनी चाहिये जो वास्तविक हो। शक्ति प्रदान करके फिर आप यह नहीं कह सकते कि वह शक्ति खुद न्यायालय द्वारा परिसीमित की जा सकती है। दूसरी बात यह है कि अनुच्छेद में यह कहा गया है कि उच्चतम न्यायालय को निर्णयों के पुनरीक्षण की जो शक्ति प्राप्त है उसका आनियमन संसद निर्मित विधि द्वारा किया जायेगा। मेरा ख्याल है कि यह व्यवस्था तो अनुच्छेद 112 के सर्वथा विपरीत है जिसे कि हमने अभी-अभी पास किया है और जिसके द्वारा उच्चतम न्यायालय को यह अधिकार दिया गया है कि किसी भी निर्णय या आदेश का, चाहे वह कहीं से भी आया हो, वह पुनरीक्षण कर सकेगा। संसद को तो पुनरीक्षण संबंधी सामान्य शक्ति के बारे में भी हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है।

***अध्यक्ष:** यहां उच्चतम न्यायालय के ही निर्णयों पर पुनरीक्षण की बात कही गई है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** मैं उस बात की ओर आ ही रहा हूं। मैं तो समझता हूं कि चूंकि उसके ही निर्णयों पर उसे पुनरीक्षण का अधिकार दिया जा रहा है इसलिए यह और जरूरी है कि अपने निर्णयों के पुनरीक्षण करने में उस पर कोई प्रतिबंध न रहना चाहिये। जब आप उसे ऐसे मामलों में संबंध में भी अबाध स्वतंत्रता प्रदान कर रहे हैं जिनका निपटारा साधारण संसद या राज्यों के विधान मंडल करते हैं, तो फिर उस पर यह प्रतिबंध क्यों लगा रहे हैं कि अपने ही निर्णयों पर पुनरीक्षण वह संसद निर्मित विधि के अधीन करेगा? इन दो बातों के संबंध में यह अनुच्छेद बड़ा ही त्रुटिपूर्ण है। डा. अम्बेडकर को मैं यह सुझाव दूंगा कि वह इस पर गौर करें कि आया इस अनुच्छेद को यों ही रहने दिया जाये या इसके स्वरूप पर विचार किया जाये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं समझता हूं कि माननीय मित्र श्री सन्तानम् ने जो बातें कहीं हैं किसी बिल्कुल गलत धारणा के आधार पर कहीं हैं। पहली बात तो यह है कि हम इस अनुच्छेद द्वारा उच्चतम न्यायालय को ऐसी कोई शक्ति नहीं प्रदान कर रहे हैं जिससे वह नियम बनाये। नियम बनाने की शक्ति उसे अनुच्छेद 121 के द्वारा दी जा रही है। अनुच्छेद 121 में, वह देखेंगे कि यह कहा गया है:

> ''संसद द्वारा बनाई हुई किसी विधि के प्रावधानों के अधीन रहते हुए, उच्चतम न्यायालय समय-समय पर, राष्ट्रपति के अनुमोदन से, उस न्यायालय के आचार और कार्यप्रणाली के सामान्यत: आनियमन के लिए, नियम बना सकेगा और इन नियमों में निम्न नियमों का भी समावेश होगा इत्यादि, इत्यादि।''

इसलिए यह कहना कि उच्चतम न्यायालय को हम यहां शक्ति दे रहे हैं, सही नहीं है। उच्चतम न्यायालय को यह शक्ति तो प्राप्त ही है पर उसका प्रयोग वह राष्ट्रपति का

अनुमोदन पाने पर ही कर सकेगा। दूसरी बात, जिसके कारण उन्हें गलतफहमी हुई है वह यह है कि उन्होंने इस बात की ओर ध्यान ही नहीं दिया कि सूची 1 के संशोधन नं. 42 के द्वारा मैंने अनुच्छेद 121 के आगे एक और अनुच्छेद 121 (ख ख) जोड़ने का प्रस्ताव किया था जिसमें पुनरीक्षण के लिए बनाये जाने वाले नियमों के बारे में व्यवस्था है। इसलिए, इन दो बातों को देखते हुए यह जरूरी है कि उच्चतम न्यायालय के पुनरीक्षण संबंधी अधिकार को अनुच्छेद 121 तथा संशोधन नं. 42 के प्रावधानों के अधीन ही रखा जाये।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 112-क को विधान का अंग माना जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 112-क विधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 113

***अध्यक्षः** अब लिया जाता है अनुच्छेद 113 को।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** सभा ने प्रथम अनुसूची के भाग 3 के राज्यों के उल्लेख को इन सभी अनुच्छेदों से हटा दिया है, इसलिए अब इस अनुच्छेद की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है। रस्मी तौर पर इस अनुच्छेद को पेश कर दिया जाये और सभा उसे अस्वीकार कर दे।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** हां, बात तो ऐसी ही है।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 113 को विधान का अंग माना जाये।''

प्रस्ताव अस्वीकृत रहा।

अनुच्छेद 113 को विधान से हटा दिया गया।

अनुच्छेद 114

***अध्यक्षः** अब अनुच्छेद 114 को लिया जाता है। इस पर एक संशोधन है श्री गुप्ते का।

(संशोधन पेश नहीं किया।)

कोई सदस्य इस अनुच्छेद के संबंध में बोलना चाहता है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी ने मेरा ध्यान इस ओर आकृष्ट किया है कि उच्चतम न्यायालय की शक्तियों के संबंध में जो

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

भी अनुच्छेद मसौदे में रखे गये हैं उनमें आयकर विषयक मामलों की अपीलों के बारे में कोई भी स्पष्ट प्रावधान नहीं हैं इस संबंध मैं यह कहना चाहता हूं कि इस मसले पर मैं विचार कर रहा हूं और छानबीन के बाद अगर यह पाया गया कि आयकर संबंधी मामलों की अपीलों के बारे में उच्चतम न्यायालय को अधिकार प्रदान करने के प्रयोजन के लिए इन अनुच्छेदों में से किसी का उपयोग नहीं किया जा सकता है, तो मैं एक विशेष अनुच्छेद जोड़ने का विचार कर रहा हूं जो खासतौर से ऐसे मामलों के लिए ही होगा। पर यह अनुच्छेद इसी तरह रहने दिया जा सकता है।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 114 को विधान का अंग समझा जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 114 विधान में शामिल किया गया।

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 115, 116 और 117 को हम पहले ही निपटा चुके हैं।

अनुच्छेद 119

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अनुच्छेद 119 पर हमने अभी विचार नहीं किया है।

***अध्यक्षः** हां, अब इस पर विचार किया जायेगा। इस पर एक संशोधन की सूचना श्री कामत की ओर से आई है। उनका संशोधन है नं. 1952 का।

(नं. 1952 से 1955 तक के संशोधन पेश नहीं किये गये।)

एक दूसरा संशोधन है नं. 41 का।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अगर अनुमति हो, श्रीमान्, तो मैं यह बता दूं कि संशोधन नं. 41 सारतः वैसा ही है जैसा कि संशोधन नं. 1953। अगर 1953 को कोई नहीं पेश करता है और श्री कामत अपने संशोधन नं. 1955 को पेश करते हैं तभी यह नं. 41 पेश किया जा सकता है।

***अध्यक्षः** न तो संशोधन नं. 1953 पेश हुआ है और न श्री कामत ही अपने संशोधन 1955 को पेश करने की स्थिति में हैं। वह किसी और काम में व्यस्त हैं। मैं समझता हूं कि यह 27 मई को पेश किया जा चुका है। इसलिए हम नं. 41 को ले सकते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान्:

''कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 1955 के संबंध में, अनुच्छेद 119 के खंड (2) को हटा दिया जाये।''

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1955 के संबंध में, अनुच्छेद 119 के खंड (2) को हटा दिया जाये।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 119 को इसके संशोधित रूप में विधान का अंग समझा जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत रहा।

अनुच्छेद 119 को, संशोधित रूप में, विधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 121

***अध्यक्ष:** 120 को हम स्वीकार कर चुके हैं। अब आता है अनुच्छेद 121। इस पर कई संशोधन आये हैं। पहले लिया जाता है संशोधन नं. 1958 को।

***श्री जैड.एच. लारी** (संयुक्तप्रांत : मुस्लिम): मेरा यह प्रस्ताव है, श्रीमान्:

''कि अनुच्छेद 121 के खंड (1) में 'राष्ट्रपति के अनुमोदन से (with the approval of the President)' शब्द हटा दिये जायें।''

इस अनुच्छेद द्वारा कतिपय ऐसे नियमों या प्रावधानों की व्यवस्था की गई है जिनका अपने कर्त्तव्यों और प्रकार्यों के पालन में बनाना, उच्चतम न्यायालय के लिए आवश्यक होगा। अगर आप इस अनुच्छेद पर गौर करें तो आप देखेंगे कि इस अनुच्छेद का मूल प्रयोजन ही यह है कि ऐसे कुछ नियम बनाये जायें जो, न्यायालय के समक्ष वकालत करने वाले व्यक्तियों के संबंध में, विशेष तरह के मामलों में सुनवाई करने वाले न्यायाधीशों की संख्या के बारे में, जामिन संबंधी नियमों के बारे में और उसी तरह की अन्य बातों के बारे में व्यवस्था निर्धारित करते हों यह सभी बातें ऐसी हैं कि उन्हें सर्वथा उच्चतम न्यायालय के विवेक पर छोड़ देना चाहिये। राष्ट्रपति के अनुमोदन को इनके लिये अगर जरूरी बना दिया जाता है तो यह एक तरह से न्यायपालिका के कार्यों में कार्यपालिका का हस्तक्षेप ही समझा जायेगा। मैं समझता हूं इन सब मामलों में जो वस्तुत: अन्दरूनी इंतजाम से संबंध रखते हैं और जिनकी व्यवस्था उच्चतम न्यायालय करेगा राष्ट्रपति का कोई हाथ न होना चाहिये। इसलिए मैं समझता हूं कि ये शब्द यहां सर्वथा अनावश्यक हैं। उच्चतम न्यायालय इसके लिए बिल्कुल सक्षम है कि आवश्यक नियमों को वह स्वत: बनाये। इसके लिए राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति लेना आवश्यक नहीं है।

[श्री जैड.एच. लारी]

यह संशोधन वस्तुतः इसी अभिप्राय से रखा जा रहा है कि उच्चतम न्यायालय कार्यपालिका के प्रभाव से सर्वथा मुक्त रहे। आशा है सभा इसको स्वीकार करेगी।

(नं. 1959 से 1961 तक के संशोधन पेश नहीं किये गये।)

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** चूंकि डा. अम्बेडकर अभी बाहर चले गये हैं, अगर अनुमति हो तो मैं उसे पेश कर दूं, श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** पेश कीजिये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** आपकी अनुमति से श्रीमान् मैं संशोधन नं. 1961 को पेश कर रहा हूं जो माननीय डा. अम्बेडकर के नाम में हैं। संशोधन यह है:

> ''कि अनुच्छेद 121 के खंड (1) के उपखंड (ख) में 'और वह समय भी जो उस न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने वाले अधिवक्ताओं को तत्संबंधी अपने निवेदन करने के लिये दिया जायें। (and the time to be allowed to advocate appearing before the Court to make their submissions in respect thereof) शब्दों को हटा दिया जाये।''

***अध्यक्ष:** इस संशोधन के संबंध में एक और संशोधन है। वह है संशोधन नं. 42।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्:

> ''कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 1959, 1960 और 1962 के संबंध में, अनुच्छेद 121 के खंड (1) के उपखंड (ख) के बाद निम्नलिखित नया उपखंड जोड़ दिया जाये:
>
> 'न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय या आदेश के पुनरीक्षण की कार्यप्रणाली के संबंध में नियम में उस समय के जिसके अन्दर ऐसे पुनरीक्षण के लिये न्यायालय को आवेदन पत्र दे देना है।' ''

यह संशोधन इसलिये जरूरी है कि सभा ने डा. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित किये गये नये खंड को स्वीकार कर लिया है जिसमें, निर्णयों पर पुनरीक्षण के प्रयोजन के लिये नियम बनाने का उच्चतम न्यायालय को अधिकार दिया गया है। सभा द्वारा स्वीकृत उस संशोधन के फलस्वरूप अब यह संशोधन आवश्यक है।

(संशोधन नं. 1963 पेश नहीं किया गया।)

इस संशोधन (नं. 1964) को बाकायदे पेश कर देना इसलिये जरूरी है कि अन्य संशोधन यानी संशोधन 42 और 43 जिनकी कि सूचना आ चुकी है पेश किये जा सकें।

इसलिए मैं इसे बाकायदे पेश कर देता हूं। संशोधन यह है:

''कि अनुच्छेद 121 के खंड (2) के परन्तुक के स्थान पर निम्नलिखित परन्तुक रखा जाये।

'पर उक्त प्रयोजनों के लिए बैठना प्रत्येक न्यायाधीश का कर्तव्य होगा जब तक कि वह रुग्णता के कारण बैठने में असमर्थ न हो या वैयक्तिक हित अथवा अन्य पर्याप्त कारण से वह यह न समझता हो कि उसे न बैठना चाहिये।' ''

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** मैं यह प्रस्ताव पेश करता हूं, श्रीमान्।

''कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 1964 के संबंध में अनुच्छेद 129 के खंड (2) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाये:

'121. (2) निकट अनुवर्ती खंड के बन्धानों के अधीन रहते हुये इस अनुच्छेद के अधीन बनाये गये नियम उन न्यायाधीशों की न्यूतनम संख्या निश्चित कर सकेंगे जो किसी प्रयोजन के लिये बैठेंगे तथा अकेले न्यायाधीशों तथा खंड न्यायालयों की शक्ति के लिये भी बन्धान कर सकेंगे।

121 (2) (क) इस संविधान के अर्थ बोध विषयक सारवान विधि प्रश्न जिस मामले में अंतर्ग्रस्त है उसका निर्णय करने के लिये अथवा इस संविधान के अनुच्छेद 119 के अधीन भेजे हुए प्रश्न के सुनने के लिये बैठने वाले न्यायाधीशों की न्यूनतम संख्या पांच होगी:

परन्तु जहां वह न्यायालय, जो इस संविधान के अनुच्छेद 111 के अधीन अपील सुन रहा है, पांच से कम न्यायाधीशों का बना है और उसे अपील को सुनते समय समाधान हो जाये कि इस संविधान के अर्थबोध का ऐसा सारवान विधि प्रश्न अपील में अन्तर्ग्रस्त है जिसका निर्णय करना उस अपील के निर्णय के लिये आवश्यक है वहां ऐसा न्यायालय इस खंड के अधीन बनाये गये न्यायालय को राय के लिये उस प्रश्न को सौंप देगा तथा राय मिलने पर उस अपील का उस राय के अनुसार निबटारा करेगा।' ''

मैं नहीं समझता कि इस उपखंड (2) और (2क) के संबंध में कुछ भी कहना जरूरी है क्योंकि उनमें जो कुछ भी कहा गया है उससे उनकी आवश्यकता स्पष्ट हो जाती है। हां, केवल परन्तुक के संबंध में कुछ प्रकाश डालना जरूरी है। परन्तुक में मुख्य बात यह है कि न्याय मंडल का समय निष्प्रयोजन नष्ट न होना चाहिये। जब किसी मामले की अपील हो तो शुरू में ही अपील करने वाली पार्टी को और अन्य प्रश्नों के साथ संवैधानिक प्रश्न को रख देना चाहिये। न्यायालय, जो इस मामले की सुनवाई करता है, अगर इस निर्णय पर पहुंचता है कि अपील पर निर्णय देने के लिये उठाये गये संवैधानिक प्रश्न पर विचार आवश्यक नहीं है और उस पर बिना विचार किये, अन्य जो बातें मामले के संबंध में कही गई हैं उनके आधार पर आसानी से फैसला किया जा सकता है तो ऐसी सूरत में यह केवल समय की बर्बादी होगी अगर वह मामला पांच न्यायाधीशों के एक

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

पूर्ण न्यायासन के पास भेजा जाये जबकि उसका निर्णय नियम के अधीन तीन न्यायाधीशों का न्यायासन ही कर सकता है। इसीलिये यह प्रावधान रखा जा रहा है। अगर मामले की सुनवाई करने वाले न्यायासन को पूर्ण संतोष हो जाये कि संवैधानिक विधि संबंधी कोई वास्तविक प्रश्न उठता है जिसका निर्णय हो जाना फैसला देने के लिये आवश्यक है तो वह प्रश्न पांच न्यायाधीशों के पूर्ण न्यायासन के समक्ष उपस्थित कर दिया जायेगा। पांचों न्यायाधीश उस संवैधानिक प्रश्न पर विचार करेंगे और उनकी राय पुनः उन तीनों न्यायाधीशों के पास या जायेगी जो मूल अपील पर तथा अन्य उठाये गये विधि संबंधी प्रश्नों पर सुनवाई करते हैं और तब वह न्यायासन उसका निर्णय करेगा। उन मामलों में, जिनके संबंध में किसी प्रश्न को उच्च न्यायालय पूर्ण न्यायासन के पास विचारार्थ भेजता है, साधारणतः यही पद्धति बरती जाती है। इसी पद्धति को अपनाने के विचार से यह सुझाव दिया गया है।

एक और बात है जिसका मैं यहां उल्लेख कर देना चाहता हूं ताकि आगे चलकर सभा यह न समझे कि मैं इस प्रश्न को देर से उठा रहा हूं और मुझे विश्वास है कि डा. अम्बेडकर इससे सहमत होंगे। वह बात यह है कि इस परन्तुक में अनुच्छेद 111 का लिखित हवाला दिया गया है। अब बात यह है कि उच्च न्यायालय क्षेत्राधिकार के विस्तार के लिये कई संशोधन लोगों ने भेजे हैं जिन पर विचार अभी रुका हुआ है। अगर उच्चतम न्यायालय में आपराधिक क्षेत्राधिकार निहित रखा जाता है तो, आपराधिक अपील में संवैधानिक प्रश्न उठाया जा सकता है। इसलिए इस पदसंहति को ''An appeal under article III of this Constitution'' सम्भवतः हटा देना होगा अन्यथा विशेष अपील के सिलसिले में भी संवैधानिक प्रश्न उठाया जा सकता है और अगर न्यायालय को यह संतोष हो जाता है कि संवैधानिक प्रश्न उठाया है तो इस खंड के अधीन बने हुए न्यायालय के पास वह बात भेज दी जायेगी। मैं यह इसलिये कहे देता हूं कि आगे चलकर यह न समझा जाये कि हम हर समय नये सशोधनों को ही लाने की कोशिश करते हैं।

इन शब्दों के साथ इस संशोधन को उपस्थित करता हूं। श्रीमान्, जो डा. अम्बेडकर और मेरे नाम से यहां आया है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** संशोधन नं. 44 की अब आवश्यकता नहीं रह जाती है। श्रीमान्, अगर अभी अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर का संशोधन मंजूर हो जाता है जो कि मेरा ख्याल है मंजूर होगा।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यरः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्:

> ''कि अनुच्छेद 121 के खंड (3) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाये:
>
> '(3) उच्चतम न्यायालय कोई निर्णय खुले न्यायालय के अतिरिक्त न सुनायेगा, तथा इस संविधान के अनुच्छेद 119 के अधीन कोई प्रतिवेदन खुले न्यायालय में सुनाई गई राय से अन्यथा न दिया जायेगा।' ''

***माननीय डा. बी.आर अम्बेडकरः** संशोधन नं. 1966 को भी मैं पेश करता हूं, श्रीमान्, वह यों है:

''कि अनुच्छेद 121 के खंड (4) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाये:

'121. (4) कोई ऐसा निर्णय तथा कोई ऐसी राय उच्चतम न्यायालय द्वारा मामले की सुनवाई में उपस्थित न्यायाधीशों में से बहुसंख्यक की सहमति से अन्यथा न दी जायेगी किन्तु इस खंड की कोई बात किसी सहमत न होने वाले किसी न्यायाधीश को अपने विमत निर्णय या राय को देने से न रोकेगी।' ''

***डा. पी.एस. देशमुखः** (मध्यप्रांत व बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, कई संशोधनों के फलस्वरूप जिनमें से कुछ तो डा. अम्बेडकर की ओर से और कुछ श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर द्वारा उपस्थित किये गये हैं, अनुच्छेद 121 का स्वरूप बहुत कुछ बदल गया है। इसको देखते हुए ''राष्ट्रपति के अनुमोदन से'' इन शब्दों की यहां रखने की आवश्यकता और भी जाती रहती है। इसलिये श्री लारी के संशोधन के प्रति जिसकी सूचना श्री शंकर राव देव और अन्य कई सदस्यों ने दी थी, मुझे पर्याप्त सहानुभूति है। जो परिवर्तन इस अनुच्छेद में कर दिये गये हैं, उनको देखते हुए, नियमों के लिए राष्ट्रपति का अनुमोदन लेना जरूरी नहीं रह जाता है क्योंकि अधिकांश मामलों के बारे में सारी बातों का स्पष्ट प्रावधान यहां ही कर दिया गया हैं। किस-किस तरह के मामलों की सुनवाई कितने न्यायाधीश करेंगे, इसको यहां प्रावहित कर दिया गया हैं। अनुच्छेद 109 के अन्दर आने वाले मामलों के संबंध में भी यहां व्यवस्था कर दी गई है। नये संशोधनों के द्वारा हमने यह स्वीकार कर लिया है कि निर्णय खुले न्यायालय में ही दिया जायेगा। उच्चतम न्यायालय के पास इस अनुच्छेद के अनुसार जो अधिकार अब बच जाते हैं वह ऐसे हैं जिनके आधार पर वह केवल उन्हीं बातों के संबंध में नियमादि बना सकता है जो अधिकतर रोजमर्रा के जाप्ते से संबंध रखती है। ये नियम कुछ इतने महत्त्वपूर्ण या आवश्यक नहीं होंगे कि प्रवर्तन में लाने के पहले राष्ट्रपति के समक्ष इनका रखा जाना जरूरी हो। जो शक्तियां यहां प्रावहित की जा रही हैं वे उनसे बहुत भिन्न नहीं हैं जोकि प्रांतीय उच्च न्यायालयों को प्राप्त हैं उच्च न्यायालय को, इन तमाम बातों के बारे में, जिनका यहां क्रमबद्ध उल्लेख किया गया है, नियम बनाने का व्यापक अधिकार प्राप्त है और किसी भी नियम या पद्धति के अधीन यह अपेक्षित नहीं है कि ये नियम गवर्नर की स्वीकृति के लिए उसके पास भेजे जायें। इसलिये मैं यह अनुभव करता हूं कि राष्ट्रपति का अनुमोदन इनके लिए अनावश्यक है और अच्छा होगा कि सभा इसके लिए पेश किये गये संशोधन को स्वीकार कर ले।

***श्री बी. दासः** मैं यह चाहता हूं, श्रीमान्, कि डा. अम्बेडकर इन शब्दों के संबंध में कि ''इस संविधान के अनुच्छेद 119 के अधीन कोई प्रतिवेदन खुले न्यायालय में सुनाई गई राय से अन्यथा न दिया जायेगा'' खुलासा कर दें। इससे समाचार पत्रों की स्वतंत्रता पर आंच आती है। मान लीजिये कि किसी समाचार पत्र को कहीं से वह राय मिल जाती है जो उच्चतम न्यायालय ने राष्ट्रपति को दी है और उसे वह छाप देता है। क्या सरकार उस पत्र के विरुद्ध गुप्त बात प्रकाशित करने के आधार पर कार्यवाही करेगी? समाचार

[श्री बी. दास]

पत्र तो गुप्त बातों को संघा करते हैं। ऐसे भी तीक्ष बुद्धि पत्रकार हैं जो इनका अन्दाज लगा लेंगे कि उच्चतम न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश राष्ट्रपति को क्या राय देंगे। इस अनुच्छेद का अभिप्राय यह तो नहीं है कि समाचार पत्रों की स्वतंत्रता पर अंकुश रखने की शक्ति संसद को प्राप्त हो जाये? प्रश्न इसमें यही है कि समाचार पत्रों की स्वतंत्रता पर तो इससे आंच न आयेगी और पत्रकारों को तो न प्रामियुक्त किया जायेगा?

***डा. बक्शी टेकचन्द:** अध्यक्ष महादेय, श्री लारी के इस संशोधन का (संशोधन नं. 1958) कि प्रस्तुत अनुच्छेद के खंड (1) से ''राष्ट्रपति के अनुमोदन से'' शब्दों को हटा दिया जाये, मैं समर्थन करता हूं। अनुच्छेद 121 उच्चतम न्यायालय को इन बातों के संबंध में नियम निर्माण का अधिकार देता हैं। न्यायालय के समक्ष अधिवक्ता के रूप में उपस्थित होने वाले व्यक्तियों के संबंध में अपीलों की सुनवाई के लिए पद्धति के अनियमन के संबंध में और इस बात को निश्चित करने के बारे में कि किस तरह के मामलों की सुनवाई एक न्यायासन या खंड न्यायालय अथवा अनेक संख्यक न्यायाधीशों के न्यायासन के समक्ष होगी। इससे उच्चतम न्यायालय को यह भी शक्ति प्राप्त होती है कि वह खर्च और अन्य आनुषंगिक बातों के बारे में, जामिन मंजूर करने के बारे में, कार्यवाही को रोकने के बारे में, किसी अपील पर जो न्यायालय को तुच्छ या तंग करने वाली अथवा विलम्ब करने के प्रयोजन के लिए की हुई प्रतीत होती हो, संक्षेपत: निर्णय देने के बारे में, नियम बना सकता है। ये सब ऐसी बातें हैं, श्रीमान्, जो उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति और अन्य न्यायाधीशों के ही क्षेत्राधिकार के अधीन होनी चाहिये और कोई कारण नहीं है कि इनके लिए राष्ट्रपति का अनुमोदन आवश्यक बनाया जाये। अगर आप इन उच्च न्यायालयों के विधान को देखें और गौर करें कि किस तरह इन सब बातों के बारे में गत अस्सी या अधिक ही कुछ वर्षों से इन्होंने अपने प्रकार्य संपादित किये हैं और किस तरह 1915 के और 1935 के भारत शासन अधिनियम के अधीन काम हुआ है तो आपको मालूम होगा कि ये सब बातें उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति एवं उसके न्यायाधीशों के क्षेत्राधिकार के ही अधीन रही हैं। अधिवक्ता और न्यायवादियों को प्रवेशाधिकार देने के संबंध में या न्यायासनों की रचना के संबंध में नियमादि बनाने का काम मुख्य न्यायाधिपति या न्यायाधीशों के ही क्षेत्राधिकार के अन्दर था। इन नियमों के प्रस्थापन के लिए गवर्नर जनरल या गवर्नर की स्वीकृति नहीं ली जाती थी। इस संबंध में उस राज पत्र (Letters patent) के खंड 9 और 10 की ओर सभा का ध्यान आकृष्ट करूंगा जिसके आधार पर कलकत्ता हाईकोर्ट की स्थापना हुई या इसी तरह के प्रावधान जो उन अन्य सभी हाईकोर्टों की स्थापना के संबंध में निकाले गये राज पत्रों में हैं अर्थात् प्रेसिडेंसी के हाईकोर्टों और इलाहाबाद, पटना, नागपुर, पूर्वी पंजाब, उड़ीसा और असम के हाईकोर्ट जो कि हाल में स्थापित किये गये हैं, इनसे सम्बन्धित राजपत्रों में है, उनकी ओर सभा का ध्यान आकृष्ट करूंगा।

खंड 9 में कहा गया है:

''और एतद् द्वारा हम बंगाल के फोर्ट विलियम स्थित उक्त हाईकोर्ट को यह अधिकार और शक्ति प्रदान करते है कि वह ऐसे और इतने संख्यक अधिवक्ताओं, वकीलों और

न्यायवादियों को जैसी और जितनों को वह आवश्यक समझेगी, अनुमोदित प्रविष्ट और रजिस्टर पर नामबद्ध करेगी और ऐसे अधिवक्ताओं, वकीलों और न्यायवादियों को न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने का अधिकार होगा और एतद् द्वारा दिया जाता है तथा इत्यादि, इत्यादि।

खंड 10 में कहा गया है:

> ''और एतद् द्वारा हम यह आदेश निकालते हैं कि बंगाल के फोर्ट विलियम स्थित उक्त हाईकोर्ट को, समुचित व्यक्तियों को उक्त न्यायालय के अधिवक्ता, वकील या न्यायवादी बनने के लिये योग्यता तथा प्रवेश सम्बन्धी नियम बनाने का अधिकार होगा और उसे यह शक्ति प्राप्त होगी कि वह समुचित कारण के आधार पर उनको हटा दे या उनको वकालत करने से रोक दे या इत्यादि, इत्यादि।''

इन सब बातों के लिये गवर्नर या गवर्नर जनरल की स्वीकृति जरूरी नहीं ठहराई गई है। हां, यह बात जरूर है कि अन्य कई विषयों के संबंध में जैसे कि नये न्यायालयों की स्थापना के संबंध में कर्मचारियों के वेतनादि निर्धारित करने के बारे में और इसी तरह की अन्य बातों के बारे में हाईकोर्ट द्वारा बनाये गये नियमों के लिये गवर्नर जनरल तथा प्रांतीय सरकारों की स्वीकृति जरूरी रखी गई है। कलकत्ता हाईकोर्ट द्वारा बनाये नियमों के लिये गवर्नर जनरल की स्वीकृति तथा अन्य हाईकोर्ट द्वारा बनाये इन नियमों के लिये संबंधित प्रांतीय सरकार की स्वीकृति अपेक्षित रखी गई हैं। पर जहां तक कि वकीलों और अधिवक्ताओं आदि के प्रवेशाधिकार के बारे में नियम बनाने का संबंध है, वह हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधिपति और न्यायाधीशों के क्षेत्राधिकार की बात है। उसके लिये गवर्नर जनरल या गवर्नर की स्वीकृति आवश्यक नहीं ठहराई गई है।

खंड न्यायासनों की रचना के संबंध में, भारत शासन अधिनियम 1915 की धारा 108 में यह प्रावधान रखा गया है:

> ''प्रत्येक उच्च न्यायालय स्वनिर्मित नियमों द्वारा जैसा वह ठीक समझे, एक या अधिक न्यायाधीशों द्वारा, या उच्च न्यायालय के दो या अधिक न्यायाधीशों से बने खंड न्यायालयों द्वारा, न्यायालय में निहित प्रारम्भिक तथा अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिये प्रावधान कर सकता है।
>
> (2) प्रत्येक उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति यह निश्चित करेगा कि हर मामले में कौन न्यायाधीश अकेले बैठेगा और न्यायालय के कौन न्यायाधीशों से, और मुख्य न्यायाधिपति को लेकर अथवा उसके बिना, विभिन्न खंड न्यायालय बनेंगे।''

भारत शासन अधिनियम की धारा 223 में यही प्रावधान, संक्षिप्त शाब्दिक परिवर्तन के साथ रखा गया है। अगर उच्च न्यायालयों के संबंध में यह स्थिति है तो फिर उच्चतम न्यायालय के संबंध में, जो कि देश का सर्वश्रेष्ठ न्यायालय होगा, आप एक भिन्न नियम क्यों रख रहे हैं? यहां राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति को क्यों अनिवार्य किया जाये? व्यवहार

[डा. बक्शी टेकचन्द]

में इसका मतलब यह होगा कि प्रधानमंत्री की पूर्व स्वीकृति आवश्यक होगी। मैं कहूंगा कि इन मामलों में जिनका संबंध उच्चतम न्यायालय के अन्दरूनी प्रशासन से है राष्ट्रपति का हस्तक्षेप सर्वथा अनावश्यक है।

अधिवक्ताओं, वकीलों एवं न्यायवादियों को प्रवेशाधिकार देने तथा न्यायासनों की रचना से संबंध रखने वाले दो खंडों का तो मैंने यहां उदाहरण दे ही दिया है। अन्य विषय जिनका उल्लेख 121 में आया है वे सामान्य महत्त्व के हैं। खर्च एवं अन्य आनुषंगिक मामलों से ही उनका संबंध है। स्पष्ट है कि इनके निर्णय के लिए उच्चतम न्यायालय ही समुचित निकाय है।

फिर जामिन की मंजूरी का सवाल आता है। यह विषय तो केवल न्यायपालिका से संबंध रखता है। इनके लिए बनाये गये नियमों को कार्यपालिका के पास क्यों भेजा जाये? ये नियम मुख्य-न्यायाधिपति एवं न्यायाधीशों पर ही छोड़ देने चाहिए। कार्यवाही रोकने के नियमों के लिए भी यही बात होनी चाहिये। जब किसी लम्बित वाद या अपील के संबंध में न्यायालय कार्यवाही रोक देते हैं तो साधारणत: यही होता है कि इस बात के लिए प्रतिभूति ले ली जाती है कि जो आदेश अन्ततोगत्वा न्यायालय देगा उसका समुचित पालन किया जायेगा। प्रतिभूति को उच्चतम न्यायालय के रजिस्ट्रार के समक्ष प्रमाणीकृत किया जायेगा। इसका निर्णय न्यायालय द्वारा बनाये गये नियम ही करेंगे।

ऐसा मालूम होता है कि प्रश्न के इस पहलू पर मसौदा समिति का ध्यान नहीं गया है कोई कारण नहीं है कि इस अनुच्छेद में ''राष्ट्रपति के अनुमोदन से'' शब्दों को क्यों रखा जाये। श्री लारी द्वारा उपस्थित किये गये संशोधन का मैं समर्थन करता हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** माननीय मित्र श्री लारी ने जो संशोधन रखा है, श्रीमान्, उसके संबंध में सभा में साधारणत: लोगों का यही ख्याल है कि उच्चतम न्यायालय के काम में आवश्यकता से अधिक हस्तक्षेप की व्यवस्था विधान में कर दी गई है। उच्चतम न्यायालय के संबंध में राष्ट्रपति को या यों कहिये कि प्रधानमंत्री को आवश्यकता से अधिक अधिकार दे दिये गये हैं छोटी-छोटी बातों के बारे में भी, जैसे कि उच्च न्यायालय की शक्तियों के संबंध में नियम बनाने आदि के बारे में भी, यही कहा गया है कि राष्ट्रपति का अनुमोदन उनके लिए आवश्यक होगा। अवश्य ही ऐसे सामान्य विषय संबंधी नियमों के लिये राष्ट्रपति का अनुमोदन जरूरी कर देना आपत्तिजनक ही है। हमें अपने उच्चतम न्यायालय को कार्यपालिका के प्रभाव से सर्वथा स्वतंत्र रखना चाहिये। उच्चतम न्यायालय की रचना हो जाये और राष्ट्रपति स्वयं उसके न्यायाधीशों को मनोनीत कर दे। फिर उसके बाद राष्ट्रपति को और कोई हस्तक्षेप उसके सम्बन्ध में न करना चाहिये। इस अनुच्छेद में जिन नियकों की चर्चा है उनको तो उच्चतम न्यायालय ही, विधि शास्त्र के नियमों के अनुसार और देश हित का ख्याल रखते हुए, बनायेगा। श्री लारी के संशोधन का मैं समर्थन करता हूं, श्रीमान्।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** एक ज्ञातक है, श्रीमान्। वक्ता महोदय से मैं यह पूछता हूं कि अनुच्छेद 111 के सिलसिले में आपने जो कुछ यहां कहा था उससे क्या आपकी

राय अब बदल गई है? उस अनुच्छेद के संबंध में तो आपने यह चाहा था कि उसके प्रावधान संसद द्वारा निर्मित विधि के अधीन हों।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** प्रश्न को मैं सुन नहीं पाया, श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** श्री कृष्णमाचारी ने आप से एक प्रश्न किया है। पर उसे आप समझ नहीं रहे हैं, सुतरा उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्री लारी के संशोधन का समर्थन करने के लिए मैं खड़ा हो रहा हूं। जैसा कि डा. टेकचन्द ने, अपने अपूर्व न्यायिक अनुभव के आधार पर अधिकृत रूप से यहां साफ-साफ समझाया है, अनुच्छेद 121 के अधीन जो नियम बनेंगे वह ऐसे ही विषयों के संबंध में होंगे जिनका संबंध न्यायालयों में बरती जाने वाली कार्य पद्धति से ही होगा। वस्तुत: पक्ष प्रतिपादन के लिए न्यायालय में उपस्थित होने वाले वकीलों के संबंध में या ऐसी ही अन्य बातों के संबंध में नियम बनाने का जो प्रश्न है वह न्यायालयों के आन्तरिक प्रशासन की बात है। ऐसी हालत में, न्यायालय के लिये यह एक बड़ी असाधारण बात होगी कि बनाये जाने वाले नियमों को वह राष्ट्रपति के पास उसकी स्वीकृति के लिये भेजे। यह बात तो मेरी समझ में आ सकती है और मैं उसे ठीक भी समझता हूं कि आप ऐसा प्रावधान रखिये कि नियमों के संबंध में राष्ट्रपति का परामर्श अपेक्षित होगा। वह बात तो मानने लायक बात होगी। मुझे इसमें रंचमात्र भी संदेह नहीं है कि इन शब्दों को हटा दिये जाने पर भी उच्चतम न्यायालय सरकार से परामर्श अवश्य ही लेगा। पर नियमों की मान्यता के लिये राष्ट्रपति के अनुमोदन को आवश्यक ठहरा देना तो एक साधारण सी ही बात होगी। मेरा कहना यह है कि सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए राष्ट्रपति के अनुमोदन का मतलब यही होगा कि तत्कालीन मंत्रिमंडल या सरकार का अनुमोदन लेना। यह और भी आपत्ति की बात है। उच्चतम न्यायालय में तो न्यायपालिका की सर्वोच्च शक्ति सन्निहित रहेगी और उसे कार्यपालिका से सर्वथा स्वतंत्र रहना चाहिये। अगर उसके लिये यह आवश्यक ठहरा दिया जाता है कि न्याय प्रशासन संबंधी अन्दरूनी मामलों के लिए यह जो नियमादि बनाये उन पर राष्ट्रपति की स्वीकृति ले तो यह एक बड़ी आपत्ति की बात होगी। जामिन की मंजूरी के बारे में नियमादि बनाने का जो प्रश्न है, अर्थात् जामिन मंजूर किया जाये या नहीं इन सब बातों का संबंध, अवश्य ही, विधान मंडल से है। पर जामिन संबंधी नियमों का आनियमन करना, उसके लिये आवेदन किया जा सकता है या नहीं, किसी जामिनदार को मंजूर किया जाये या नहीं इत्यादि जो बातें हैं वह ऐसी हैं कि उनका संबंध उच्चतम न्यायालय के ही आन्तरिक प्रशासन से है। कार्यवाही को रोकने की जो बात है वह सर्वथा न्यायालय के विवेक पर निर्भर करती है और इसके लिए पहले से ही कोई खास नियम बना दिया जाये यह असम्भव है। ये मामले ऐसे हैं कि न्यायालय के विवेक पर ही निर्भर करते हैं और प्रत्येक मामले की परिस्थिति के साथ बदलते रहते हैं। इनके लिये पहले से कोई नियम नहीं बनाये जा सकते हैं। इसलिये इन नियमों को तो न्यायालय के विवेक पर ही छोड़ देना चाहिये। और फिर कार्यवाहियों से संबंध रखने वाली बातें और संक्षेपत: निर्णय दे देने की जो बात है वह शुद्धत: न्यायिक मसले हैं। मैं विस्तार की बातों में नहीं जाना चाहता। उनको डा. बख्शी टेकचन्द ने यहां

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

खूब अच्छी तरह, योग्यतापूर्वक समझा दिया है। मैं यही कहता हूं कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप का न होना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि हस्तक्षेप का आभास तक न होना चाहिए। इन कारणों से इन शब्दों को यहां रखना सर्वथा आपत्तिजनक है और इन्हें हटा ही देना चाहिये। इसमें मुझे रंचमात्र भी सन्देह नहीं है, जैसा कि मैंने अभी कहा है, कि उच्चतम न्यायालय सरकार से सदा परामर्श कर लिया करेगा और यहां इतना ही काफी होना चाहिए। बजाय इसके कि इसके संबंध में कोई कानून बनाया जाये, अच्छा होगा कि उसे रूढ़ि पर छोड़ दिया जाये। इन शब्दों के साथ, श्री लारी के संशोधन का मैं समर्थन करता हूं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** अध्यक्ष महोदय, ''राष्ट्रपति के अनुमोदन से'' शब्दों के हटाने का जो समर्थन किया जा रहा है उस पर मुझे आश्चर्य हो रहा है। इनको हटाने का परिणाम यह नहीं होगा कि उच्चतम न्यायालय को कार्यपालिका से सर्वथा स्वतंत्रता मिल जायेगी। इससे तो यही होगा कि विधि द्वारा नियम निर्माण संबंधी शक्ति को सीमित करने का कार्यपालिका को अधिकार प्राप्त हो जायेगा। जब तक कि अनुच्छेद का पहला अंश यानी ये शब्द ''संसद द्वारा बनाई हुई किसी विधि के बन्धानों के अधीन रहते हुए'' वहां है, ''राष्ट्रपति के अनुमोदन से'' शब्दों के रहने से उच्चतम न्यायालय के लिए एक सुरक्षा ही रहती है। यह इसलिए कि संसद को ऐसी विधि बनाने का अधिकार रहेगा ही जिससे उच्चतम न्यायालय का नियम-निर्माण विषयक अधिकार सर्वथा छिन जाता हो और संसद इन में से हर बात के लिये विधि द्वारा खुद प्रावधान कर सकती है। इसलिये अगर नियम निर्माण विषयक अन्तिम अधिकार आप संसद में ही निहित रखते हैं तो अच्छा यही होगा कि सभी नियम राष्ट्रपति के अनुमोदन से ही बनाये जायें।

और फिर यह एक ऐसा विषय है जिसका संबंध आम नीति से है। उदाहरण के लिए आप उन नियमों को ही ले लीजिये जो न्यायालय के समक्ष वकालत करने वाले व्यक्तियों के संबंध में बनाये जायेंगे। क्या उच्चतम न्यायालय को ऐसा कहने का अधिकार रहेगा कि अमुक विश्वविद्यालय की ही उपाधि को तो वह मान्यता देगा और अन्य किसी विश्वविद्यालय की उपाधियों को नहीं? कानून विषयक शिक्षा का समूचा प्रश्न और अन्य कई अंतर्प्रांतीय प्रश्न भी खड़े होंगे और सम्भवत: यह ऐसी बातें होंगी जिनके संबंध में, किसी निर्णय पर पहुंचने के लिये उच्चतम न्यायालय के पास पर्याप्त सामग्री ही न होगी और उसे कार्यपालिका से परामर्श करना ही होगा। न केवल केन्द्रीय कार्यपालिका से बल्कि प्रांतीय कार्यपालिकाओं से भी उसे परामर्श लेना आवश्यक होगा। केन्द्रीय मंत्रिमंडल का शिक्षा विभाग ही यह बताने का अधिकारी होगा कि कौन विद्यालय समुचित रूप से उपाधि प्रदान कर रहा हैं। अन्यथा फिर उच्चतम न्यायालय को एक ऐसे आयोग की नियुक्ति करनी पड़ेगी जो विभिन्न विश्वविद्यालयों के शिक्षा स्तर की जांच कर यह बतायेगा कि किस की उपाधियों को मान्यता दी जाये। मैं नहीं समझता कि इस बात को सर्वथा उच्चतम न्यायालय के हाथ में छोड़ना ठीक होगा। उसी तरह खर्च और शुल्क से संबंध रखने वाले और कई प्रश्न हैं जो आम नीति से संबंध रखते हैं। यह बिल्कुल सही है कि उच्चतम न्यायालय को कार्यपालिका का सहयोग प्राप्त करना चाहिये। यह विचार कि उच्चतम न्यायलय को ऐसे

निकाय के रूप में रहना चाहिए जो संविधान में प्रावहित अन्य सभी संस्थाओं से सर्वथा भिन्न हो, बिल्कुल गलत है और हानिकर है। उच्चतम न्यायालय की व्यवस्था सुरक्षा के लिए की जा रही है। पर इसे अगर आप ऐसी स्थिति में रख देते हैं कि कार्यपालिका एवं संसद का इसके प्रति वैर भाव बना रहे तो उच्चतम न्यायालय की सारी शक्ति जाती रहेगी क्योंकि, अन्ततोगत्वा इसे संसद एवं कार्यपालिका की सद्भावना पर ही निर्भर करना पड़ेगा। इसलिए मैं यही सुझाव दूंगा कि उच्चतम न्यायालय को सर्वथा स्वतंत्र रखने का जो विचार है उन पर ही कुठाराघात न होने दीजिये जैसा कि यहां कई सदस्य अपने प्रयास द्वारा कर रहे हैं।

अब एक ही और छोटी सी बात रह गई है जिसकी ओर मैं आपका ध्यान आकृष्ट करूंगा। नये खंड में, जिसको कि माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने अपने संशोधन नं. 42 के द्वारा प्रस्तावित किया है, यह कहा गया है:

''न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय या आदेश के पुनरीक्षण की कार्य प्रणाली के संबंध में नियम में उस समय के जिसके अन्दर ऐसे पुनरीक्षण के लिये न्यायालय को आवेदन-पत्र दे देना है।'' इसके संबंध में मेरा यह कहना है कि यह अनुच्छेद 112-क से सर्वथा असंगत है जिसे कि हम पास कर चुके हैं। 112-क में कहा गया है कि न केवल पुनरीक्षण की कार्य प्रणाली बल्कि पुनरीक्षण की शक्ति, या पुनरीक्षण संबंधी शर्तें नियमों के अधीन सीमित रहेगी। उस प्रावधान के विरुद्ध मैंने खुद आपत्ति की थी पर जबकि वह पास हो चुका है तो अब जो दूसरे संशोधन इस संबंध में रखे जाये वह मेरा ख्याल है, स्वीकृत प्रावधान से संगत होने चाहिये। इस संबंध में मेरा सुझाव यह है कि ''पुनरीक्षण की कार्य प्रणाली के संबंध में नियम'' शब्दों की जगह केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ''पुनरीक्षण के संबंध में नियम''। आप अगर यह चाहते हैं कि 'कार्य प्रणाली' शब्द रहे ही तो यों रखिये ''पुनरीक्षण की शर्तों और उसकी कार्यप्रणाली के संबंध में नियम''। उस रूप में रखने से यह अनुच्छेद पूर्व के अनुचछेद से संगत हो जायेगा जिसे हम पास कर चुके हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मुझे खेद है कि माननीय मित्र श्री लारी के संशोधन को मैं नहीं स्वीकार कर सकता। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस संशोधन में जो बात अन्तर्ग्रस्त है उसे समझने में उन्होंने बिल्कुल भूल की है।

उच्चतम न्यायालय की नियम-निर्माण संबंधी शक्ति को राष्ट्रपति के अनुमोदन के अधीन रखने का कारण यह है कि अगर नियम निर्माण को सर्वथा उच्चतम न्यायालय की मरजी पर छोड़ दिया जाता है तो हो सकता है कि उसके बनाये नियमों के कारण देश के राजस्व पर काफी भार पड़ जाये। मैं एक उदाहरण देकर इसे स्पष्ट किये देता हूं। मान लीजिये इस आशय का वह एक नियम बनाता है कि इस तरह के मामलों की सुनवाई दो न्यायाधीश करेंगे। उच्चतम न्यायालय द्वारा बनाया गया ऐसा नियम एक सरल सा नियम हो सकता है पर इसमें खक नहीं कि इससे सरकारी राजस्व पर भार बढ़ जायेगा। इसी तरह के अन्य प्रावधान भी नियमों में आयेंगे, जिनसे राजस्व पर भार पड़ सकता है। देयों (fees) के आनियमन के जो नियम होंगे उनका भी सरकारी राजस्व से ही संबंध होगा। इसे

[माननीय डा. बी.आर अम्बेडकर]

बनाने का काम उच्चतम न्यायालय की मरजी पर नहीं छोड़ा जा सकता। इसलिये मेरा निवेदन यही है कि अनुच्छेद 121 में जो यह रखा गया है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा बनाये गये नियम राष्ट्रपति के अनुमोदन के अधीन होंगे वह एक समुचित व्यवस्था है और इस पर हमें चलना चाहिये। ऐसे विषय, जिनसे सरकारी राजस्व पर भार पड़ता हो जिसकी पूर्ति के लिए विधान मंडल या कार्यपालिका को कर लगाने की व्यवस्था करनी पड़ेगी, उन्हें कार्यपालिका की हद से बाहर नहीं रखा जा सकता।

मैं यह भी बता दूं कि अनुच्छेद 121 में जो प्रावधान रखे गये हैं वह ठीक वही हैं जो भारत शासन अधिनियम 1935 के अनुच्छेद 214 और 224 में हैं जिनका संबंध क्रमशः फेडरल न्यायालय तथा हाईकोर्टों से है। इसलिए, जो व्यवस्था आज वर्तमान है, उससे कोई भिन्न व्यवस्था इस अनुच्छेद में नहीं प्रावहित की गई है। माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी द्वारा उपस्थित किये गये संशोधन नं. 42 के संबंध में माननीय मित्र श्री के. सन्तानम् ने जो कुछ टीका टिप्पणी की है उसके संबंध में मुझे यह कहना है कि मैं ठीक-ठीक समझ नहीं पाया कि वह क्या बात कहना चाहते है; इसलिए, इसके संबंध में इतना ही कह सकता हूं कि मसौदा समिति जब विधान की आवृत्ति के लिए बैठेगी तो इन सभी बातों पर विचार करेगी और अगर किसी नई पदसंहति रखने का सुझाव होगा जो उस अनुच्छेद के प्रावधानों से संगत है जिसे हम, उच्चतम न्यायालय पुनरीक्षण संबंधी अधिकार देने के बारे में पास कर चुके हैं, तो उस पर निःसंदेह वह विचार करेगी।

एक और बात है जिसका मैं यहां जिक्र कर देना चाहता हूं और वह है संशोधन नं. 43 के संबंध में। संशाधन नं. 43 में, जिसे माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने पेश किया है और जिसका मैं हृदय से समर्थन करता हूं। एक परन्तुक है जिसमें यह कहा गया है कि, अनुच्छेद 110 में प्रावहित विषय को छोड़कर अन्य किसी विषय के बारे में अगर संविधान के निर्वचन का कोई प्रश्न उठता है तो अपील को पांच न्यायाधीशों के एक न्यायासन की भेजा जायेगा और उस प्रश्न का निपटारा हो जाने पर मामलों को पुनः प्रारम्भिक न्यायासन के पास वापस लौटा दिया जायेगा। परन्तुक में अनुच्छेद 111 का हवाला दिया गया है पर मैं समझ रहा हूं कि अगर आगे चल कर उच्चतम न्यायालय को आपराधिक अपीलों की सुनवाई का क्षेत्राधिकार देने का सभा निश्चय करती है तो उस हालत में इस परन्तुक में भी तदनुरूप परिवर्तन कर देगा होगा ताकि उच्चतम न्यायालय, आपराधिक मामलों के संबंध में उठने वाले ऐसे प्रश्नों के बारे में भी इस तरह की अपीलों की सुनवाई कर सके। इसलिए मेरा कहना यह है कि अगर सभा इस बात को मंजूर कर लेती है कि उच्चतम न्यायालय को आपराधिक क्षेत्राधिकार प्राप्त रहना चाहिये, जिसका सुझाव कई क्षेत्रों से दिया जा रहा है, तो उस सूरत में इस परन्तुक में भी तदनुसार परिवर्तन कर देना होगा।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

> ''कि अनुच्छेद 121 के खंड (1) में ''राष्ट्रपति के अनुमोदन से'' शब्दों को हटा दिया जाये।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1958, 1960 और 1962 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 121 के खंड (1) के उपखंड (ख) के बाद निम्नलिखित नया उपखंड रखा जाये:

'न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय या आदेश के पुनरीक्षण की कार्यप्रणाली के सम्बन्ध में नियम, मय उस समय के जिसके अन्दर ऐसे पुनरीक्षण के लिये न्यायालय को आवेदन पत्र दे देना है।' ''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 121 के खंड (1) के उपखंड (ख) में 'और वह समय भी जो उस न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने वाले अधिवक्ताओं को तत्सम्बन्धी अपने निवेदन करने के लिये दिया जाये' शब्दों को हटा दिया जाये।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 1964 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद के खंड (2) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाये:

'121-(2). निकट अनुवर्ती खंड के बन्धानों के अधीन रहते हुए इस अनुच्छेद के अधीन बनाये गये नियम उन न्यायाधीशों की न्यूनतम संख्या निश्चित कर सकेंगे जो किसी प्रयोजन के लिये बैठेंगे तथा अकेले न्यायाधीशों तथा खंड न्यायालयों की शक्ति के लिये भी बन्धान कर सकेंगे।

121 (2) (क). इस संविधान के अर्थबोध विषयक सारवान विधि-प्रश्न जिस मामले में अन्तर्ग्रस्त है, उसका निर्णय करने के लिये अथवा इस संविधान के अनुच्छेद 119 के अधीन भेजे हुए प्रश्न के सुनने के लिये बैठने वाले न्यायाधीशों की न्यूनतम संख्या पांच होगी:

परन्तु जहां वह न्यायालय, जो इस संविधान के अनुच्छेद 111 के अधीन अपील सुन रहा है, पांच से कम न्यायाधीशों का बना है और उसे अपील को सुनते समय समाधान हो जाये कि इस संविधान के अर्थबोध का ऐसा सारवान विधिप्रश्न अपील में अन्तर्ग्रस्त है जिस का निर्णय करना उस अपील के निर्णय के लिये आवश्यक

[अध्यक्ष]

है, वहां ऐसा न्यायालय इस खंड के अधीन बनाये गये न्यायालय को राय के लिये उस प्रश्न को सौंप देगा तथा राय मिलने पर उस अपील का उस राय के अनुसार निबटारा करेगा।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 121 के खंड (3) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाये:

'(3) उच्चतम न्यायालय कोई निर्णय खुले न्यायालय के अतिरिक्त न सुनायेगा, तथा इस संविधान के अनुच्छेद 119 के अधीन कोई प्रतिवेदन खुले न्यायालय में सुनाई गई राय से अन्यथा न किया जायेगा।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

कि अनुच्छेद 121 के खंड (4) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाये:

'(4) कोई ऐसा निर्णय तथा कोई ऐसी राय उच्चतम न्यायालय द्वारा मामले की सुनवाई में उपस्थित न्यायाधीशों में से बहुसंख्यक की सहमति से अन्यथा न दी जायेगी। किन्तु इस खंड की कोई बात सहमत न होने वाले किसी न्यायाधीश को अपने विमत-निर्णय या राय को देने से न रोकेगी।' ''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 121 को, इसके संशोधित रूप में, विधान का अंग माना जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ

अनुच्छेद 121 अपने संशोधित रूप में विधान में शामिल किया गया।

नवीन अनुच्छेद 122-क

***डा. बक्शी टेकचन्द:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1909 और 1926 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 122 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद रखा जाये:

'122-(क). इस अध्याय में, इस संविधान में निर्वचन के सारवान विधि-प्रश्न के बारे में जो निर्देश है, उसका अर्थ ऐसा किया जायेगा कि मानो उसके अन्तर्गत

भारत शासन अधिनियम 1935 के, अथवा उसके अधीन बनाये गये किसी परिषदादेश या आदेश के, अथवा भारतीय-स्वतंत्रता-अधिनियम 1947 के, अथवा उसके अधीन बनाये गये किसी आदेश के निर्वचन के सारवान विधि-प्रश्न के निर्देश भी हैं।' ''

इस नये अनुच्छेद को जोड़ने की जरूरत इसलिये आती है, श्रीमान्, कि इस अध्याय के कई अनुच्छेदों में जो उच्चतम न्यायालय की शक्तियों के सम्बन्ध में रखे गये हैं यह पदसंहति कि ''संविधान के निर्वचन के सारवान विधि-प्रश्न के बारे में'' प्रयुक्त हुई है। उदाहरण के लिये आप अनुच्छेद 110 को ही ले लीजिये जो भारत शासन अधिनियम की धारा 205 का स्थानीय है। इसके द्वारा किसी पक्ष को यह अधिकार प्राप्त है कि किसी भी मामले के सम्बन्ध में चाहे वह व्यवहार विषयक हो, या आपराधिक हो, या अन्य कार्यवाही के सम्बन्ध में दिये गये निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील कर सकता है; उच्च न्यायालय यह प्रमाणित करता हो कि उस मामले में संविधान के निर्वचन को लेकर कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है। पर ऐसे भी मामले आ सकते हैं जिन में भारत शासन अधिनियम, या सम्राट द्वारा निकाले गये परिषदादेश, या भारत शासन अधिनियम द्वारा प्रदत्त शक्तियों के अधीन गवर्नर जनरल द्वारा निकाले गये आदेश के निर्वचन के सम्बन्ध में कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो। इसी तरह, हो सकता है किसी मामले में, भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के निर्वचन के किसी सारवान विधि प्रश्न के अन्तर्ग्रस्त होने का प्रश्न उठाया जाये। प्रस्तुत अनुच्छेद में, ऐसे मामलों की अपील की कोई गुंजाइश नहीं हैं। हो सकता है कि जिस दिन अपना यह संविधान प्रवर्तन में आवे उस दिन उच्च न्यायालय के समक्ष या अन्य अधीन न्यायालयों के समक्ष लम्बित मामलों के सम्बन्ध में ऐसे प्रश्न उठाये जायें। उन मामलों के बारे में आखिर क्या किया जायेगा? ''इस संविधान'' इस पद-संहति के अर्थ की परिधि को जब तक कि उस रूप में और विस्तृत नहीं किया जाता है जैसा कि इस संशोधन में सुझाया गया है, ऐसे मामलों पर उच्च न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णयों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील हो ही नहीं सकती है। हो सकता है कि ऐसे जो मामले हों वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण हों और केन्द्रीय या प्रान्तीय विधानमंडल द्वारा निर्मित किसी विधान के सम्बन्ध में अथवा गवर्नर जनरल या गवर्नर द्वारा प्रख्यापित किसी अध्यादेश के सम्बन्ध में उठाये गये हों। उच्च न्यायालय द्वारा निर्मित मामलों में अगर ये प्रश्न उठाये गये हों और संविधान के प्रारम्भ के दिन वह मामले प्रिवी कौंसिल के समक्ष लम्बित हों तो वे मामले अनुच्छेद 308 (2) में दिये हुए संक्रमण सम्बन्धी प्रावधान के अधीन स्वत: उच्चतम न्यायालय को स्थानान्तरित हो जायेंगे। यह अनुच्छेद 308 (2) आगे चल कर समय पर सभा के समक्ष विचारार्थ आयेगा ही। इसी तरह के प्रश्न अन्य और मामलों में उठाये गये होंगे जिनका निर्णय न तो अधीन न्यायालयों ने किया होगा और न उच्च न्यायालयों ने किया होगा या ऐसे प्रश्न संविधान के प्रवर्तन में आ जाने के बाद दायर किये जाने वाले मामलों में उठाये जायेंगे। ऐसे मामलों के लिये विधान में कोई प्रावधान नहीं किया गया है। वर्तमान विधि के अनुसार ऐसे मामलों की अपील फेडरल न्यायालय में होनी चाहिये पर फेडरल न्यायालय तो उस दिन अस्तित्व में ही न रह जायेगा जिस दिन कि संविधान प्रवर्तन में आयेगा ऐसे मामलों के संबंध

[डा. बक्शी टेकचन्द]

में भी, अनुच्छेद 110 या 111 अथवा अन्य किसी अनुच्छेद के अधीन उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सके, उसके लिए संविधान में एक न एक प्रावधान रखना ही होगा। इसीलिये, बजाय इसके कि हम अनुच्छेद 110, 111(2), 116 या दो एक और अनुच्छेदों में इन शब्दों को बार-बार लायें, एक स्वतंत्र निर्वचन-मूलक खंड रखना यहां जरूरी समझा गया है।

इस संशोधन का प्रभाव यह होगा कि ''इस संविधान'' शब्द जहां कहीं भी इस अध्याय में प्रयुक्त है, उसमें अपने इस पास होने वाले संविधान के निर्वचन का प्रश्न तो शामिल ही माना जायेगा पर साथ ही वह प्रश्न भी इसमें शामिल माने जायेंगे जो भारत शासन अधिनियम 1935 के, या किसी परिषदादेश या उसके अधीन निकाले गये किसी आदेश के या भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम या उसके अधीन निकाले गये किसी आदेश के निर्वचन के सम्बन्ध में उठाये गये हों।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** मैं यहां एक बड़ा ही नाजुक सवाल उठाना चाहता हूं। जिस दिन अपना यह संविधान प्रवर्तन में आयेगा उसी दिन से भारत शासन अधिनियम और उसके अधीन जारी किये सभी आदेश तथा भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 और उसके अधीन निकाले गये सभी आदेश सर्वथा व्यपगत हो जायेंगे। उनकी कोई भी वैध मान्यता न रह जायेगी। और अगर उनके अधीन निर्मित कोई विधि प्रभावी बनी रहती है तो यह तभी सम्भव है जब कि संविधान में इस आशय का कोई प्रावधान हो कि सभी विधियां जो संविधान के प्रारंभ के समय प्रभावी हैं, वह प्रभावी बनी रहेंगी बशर्ते कि वह इस संविधान के विरुद्ध न हों। संविधान के प्रावधानों पर ही उनकी विधि सम्बन्धी मान्यता निर्भर करती है। इसलिये प्रश्न तो इस संविधान के अधीन ही उठाये जा सकते हैं। मेरी समझ से तो यह सुझाव—न्यायिक अनर्गलता इसे मैं नहीं कह सकता—एक न्यायिक अनुपयुक्तता ही है। यह सर्वथा निरर्थक है। आखिर हम उच्चतम न्यायालय को ऐसे संविधानों के निर्वचन पर विचार करने के लिये नहीं कह सकते हैं जो सर्वथा मृत्त हो चुके हैं और कानून की दृष्टि से जिनकी कोई मान्यता ही न रह गई हो। क्या यह संभव है कि इस संविधान के प्रवर्तन में आ जाने के बाद भी कोई व्यक्ति, भारत शासन अधिनियम 1935 के अधीन किसी न्यायालय में कोई मुकदमा दायर कर सकता है? निर्वचन के आधार पर तर्क उपस्थित किये जायें, यह तो हो सकता है पर भारत शासन अधिनियम 1935 की धारा 211 पर विचार करने के लिये और यह बताने के लिये कि इसका यह निर्वचन है, उच्चतम न्यायालय बैठे, यह क्या ठीक होगा? या उच्चतम न्यायालय क्या भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के किसी धारा के निर्वचन के सम्बन्ध में निर्णय दे सकता है? भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम को बनाया था ब्रिटिश पार्लियामेंट ने। फिर भारत का उच्चतम न्यायालय यह कैसे कह सकता है कि ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा बनाई गई अमुक धारा का निर्वचन यह है? उच्चतम न्यायालय इतना ही कह सकता है कि भारत शासन अधिनियम के अधीन बनाई गई विधियां कहां तक इस संविधान से संगत हैं या यह कि इस संविधान के अधीन उनका प्रवर्तन में रहना कहां तक संगत है। संविधान के निर्वचन के जो भी प्रश्न उच्चतम न्यायालय के समक्ष उपस्थित किये जायेंगे वह सब इसी प्रस्तुत संविधान के निर्वचन विषयक प्रश्न ही माने जायेंगे। इस संविधान का निर्वचन

देने के प्रसंग में उच्चतम न्यायालय यह तो कह सकता है कि भारत शासन अधिनियम या पार्लियामेंट द्वारा बनाई गई किसी विधि पर विचार करे। मैं यह भी बता दूं कि इस सम्बन्ध में मैंने श्री अल्लादी कृष्णास्वामी से विचार विमर्श किया था और उनका भी यही ख्याल है कि मेरी इस राय पर यहां विचार होना चाहिये। मैं समझता हूं कि यह ऐसा मामला है जिस पर वकीलों का समुचित ध्यान अपेक्षित है क्योंकि इस विषय के सम्बन्ध में वह हमसे ज्यादा जानकार हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, माननीय मित्र श्री सन्तानम् ने, मेरा ऐसा ख्याल है कि इस संशोधन का विरोध करने में और उसे उपहासास्पद बताने में बड़ी उजलत से काम लिया है।

आप जो कुछ कह रहे हैं वह एक कोरे सैद्धान्तिक प्रस्ताव के रूप में तो ठीक हो सकता है पर यदा कदा उत्पन्न होने वाली आकस्मिक स्थितियों के लिये संविधान में कोई व्यवस्था ही न रह जायेगी अगर आप इस तरह का एक अपवाद-वाक्य-खंड नहीं रखते हैं। बहुत सी बातें ऐसी होंगी जो पुराने विधान के अधीन की गई होंगी और आपके इस नये संविधान में बहुत सी व्यवस्थायें ऐसी होंगी जो पुराने विधान की व्यवस्थाओं से न केवल भिन्न ही होंगी बल्कि हो सकता है कि उनके सर्वथा विपरीत हों राज्य द्वारा किये गये बहुत से कार्य ऐसे हो सकते हैं जो पुराने विधान के लिये तो अवैध हों पर इस नवीन संविधान के लिये सर्वथा वैध हों। अगर ऐसे किसी कार्य की वैधानिकता पर कोई प्रश्न उठाया जाता है तो उस सूरत में क्या किया जायेगा? उदाहरण के लिये एक मिसाल आप के सामने रखता हूं। मान लीजिये पुराने विधान में प्रान्तीय सरकार को सम्पत्ति के मूल्य वर्धन पर कर लगाने का या बड़े-बड़े लाभों पर कर लगाने का अधिकार नहीं प्राप्त है पर इस नवीन संविधान की अनुसूची में समुचित स्थान पर हम यह प्रावधान रख देते हैं कि इन करों को आरोपित करने का अधिकार प्रान्तीय सरकार को होगा। अब ऐसी सूरत में अगर कोई व्यक्ति, जिसे प्रान्तीय सरकार द्वारा लगाये गये कर के विरुद्ध यह शिकायत है कि जब वह कर आरोपित किया गया था उस समय पुराने विधान के अनुसार यह नहीं आरोपित किया जा सकता था। सुतरा प्रान्तीय सरकार की वह कार्रवाई अवैध थी, इस सम्बन्ध में न्याय के लिये कोई कार्रवाई करता है तो उसका फैसला कैसे हो सकेगा? अवश्य ही यह समस्या एक नाजुक समस्या है। ऐसी स्थिति की जो कल्पना की जा रही है वह कोरी कल्पना ही नहीं रहेगी बल्कि वह स्थिति तथ्य के रूप में हमारे सामने आ सकती है क्योंकि नवीन संविधान में ऐसे प्रावधान रखे जा सकते हैं जिनसे लोगों की वह दिक्कत दूर हो जायेगी जो भारत शासन अधिनियम में दी हुई केन्द्र एवं प्रान्तों के बीच शक्ति वितरण सम्बन्धी व्यवस्था को लेकर लोग महसूस करते हैं। वस्तुत: इस नवीन खंड को इस अभिप्राय से रखा जा रहा है कि जिन बातों के बारे में, नये संविधान में काफी परिवर्तन कर दिया गया है, उनको लेकर उठने वाले विवाद भी इसके अन्दर आ जाये और परिवर्तनों के फलस्वरूप जिन लोगों के हितों पर आघात पहुंचता हो उनके हितों की रक्षा की जा सके। यह कहना कि चूंकि हम नया संविधान पास कर रहे हैं इसलिये वही संविधान अब सभी अतीत में होने वाली बातों के लिये लागू होगा, कहने के लिये तो आसान है पर अमल में यह बात उतनी आसान नहीं है। इस मसले

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

पर काफी मतभेद की गुंजाइश है। अगर इस आशय का प्रावधान संविधान में नहीं रखा जाता है तो उससे बहुतों को बड़ा नुकसान पहुंचेगा। मसौदा समिति में इस मसले पर काफी वाद-विवाद हुआ था और उसीके फलस्वरूप यह प्रस्तुत प्रावधान आपके सामने रखा गया है। आदरणीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने इस सम्बन्ध में जो भी मत व्यक्त किया हो उसकी आलोचना करने में मुझे विरक्ति का ही बोध होना चाहिये पर...

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** इस सम्बन्ध में मैंने कोई भी राय व्यक्त नहीं की है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अगर इस सम्बन्ध में आपको कोई जबरदस्त आपत्ति रही हो तो हो सकता है आपने अपना विचार व्यक्त किया हो। ऐसा करने में क्षति ही क्या है?

मेरा कहना यह है कि संविधान में एक कमी रह गई है जिसके लिये यह खंड रखना जरूरी है। या यों कहिये कि इस आशय का प्रावधान अगर संविधान में नहीं रहता है तो उससे बहुतों के हितों पर आघात पहुंचेगा और उनके हितों को बचाने के लिये इस व्यवस्था का रखना जरूरी है। माननीय मित्र श्री सन्तानम् ने जो कुछ कहा है उसके महत्त्व को घटाने के लिये मैं यहां कुछ नहीं कहना चाहता पर मेरा यह ख्याल है कि गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर माननीय मित्र श्री सन्तानम् यही पायेंगे कि यह नवीन अनुच्छेद अनावश्यक नहीं है। खूब बुद्धिमत्तापूर्वक और सावधानी से विचार करने के बाद ही इस नवीन अनुच्छेद को संविधान में रखने का प्रस्ताव किया गया है और यह बात नहीं है कि संविधान में केवल एक निष्प्रयोजन अनुच्छेद रखने के लिये ही यह प्रस्तावित किया गया है। डा. टेकचन्द बख्शी द्वारा रखे गये इस प्रस्ताव का मैं समर्थन करता हूं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, मेरा तो यह ख्याल है कि एक साधारण सी बात को लेकर वहां इतना तूल खड़ा किया जा रहा है। यह अनुच्छेद एक ऐसी स्थिति के निराकरण के लिये रखा जा रहा है जो बहुत सम्भव है हमारे सामने आयेगी और न्यायालय में वह स्थिति प्रतिदिन उत्पन्न हो सकती है। एक निश्चित तिथि पर ही यह संविधान प्रवर्तन में आयेगा पर इसके प्रवर्तन में आने के पूर्व भी बहुत से काम हमें करने पड़ेंगे। विधेयक पास करने होंगे, तथा और भी बहुत सी बातें की जायेंगी जो भारत शासन अधिनियम 1935 के अधीन अथवा वर्तमान में प्रवृत्त भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के अधीन ही की जायेंगी। यह जरूरी नहीं है कि इन अधिनियम के अधीन किये गये कार्यों पर, अधिनियमों के विलम्बन काल में कोई प्रश्न उठाया ही जाये। इस संविधान के पास हो जाने के बाद या आगे चल कर दस या बीस वर्ष बाद भी इन पर सवाल किया जा सकता है। मुगल सम्राटों या ईस्ट इंडिया कम्पनी के दस्तावेजों और बख्शीसों की वैधानिकता पर आज भी प्रश्न किये जाते हैं। इसलिये यह एक महत्त्वपूर्ण मसला है। अगर हम इस खंड को नहीं पास करते हैं तो यहां खामी रह जायेगी और अतीत कालीन लेनदेन को लेकर मामले चल सकते हैं। ऐसे मामलों के निपटारे के लिये इस व्यवस्था का रहना आवश्यक है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्री सन्तानम् के दृष्टिकोण का समर्थन करना मैं अवश्य पसन्द करता पर मेरा यह ख्याल है कि आप जो चाहते हैं अगर यह जरूरी ही है तो उसके लिये संसद द्वारा एक अधिनियम पास किया जा सकता है। संविधान में इसको क्यों रखा जाये। संविधान में सदा के लिये यह बात क्यों रखी जाये कि भारत शासन अधिनियम तथा उसके अधीन जारी किये गये आदेशों के निर्वचन के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय जो निर्णय करे वही उनके निर्वचन माने जायेंगे? अगर किसी एक खास अवधि के लिये जब तक कि ये आदेश प्रवृत्त हैं या भारत शासन अधिनियम के अधीन कतिपय वादों का निर्णय होना बाकी है, तभी तक के लिये अगर हमें इस प्रावधान की आवश्यकता है तो इसके लिये हम संसद में एक अधिनियम पास कर सकते हैं या जिस दिन यह संविधान प्रवर्तन में आये उसी दिन एक अध्यादेश इसके लिये निकाल सकते हैं ताकि इस स्थिति का निराकरण किया जा सके पर संविधान में इस को रख कर उसे क्यों बोझिल बनाया जाये। इसलिये मेरा यह ख्याल है कि डा. अम्बेडकर को संविधान से इस प्रावधान को हटा देना चाहिये और संसद पर या तो यह बात छोड़ देनी चाहिये कि वह एक यथावश्यक अधिनियम बना ले जिसके अधीन निलम्बित मामलों का निर्णय किया जा सके या जब तक कि ऐसा अधिनियम नहीं बनता है तब तक के लिये एक अध्यादेश द्वारा इसकी व्यवस्था कर ली जाये।

***डा. पी.एस. देशमुख:** सभा के समक्ष जो नवीन अनुच्छेद विचाराधीन है उसे संविधान में रखने का प्रयोजन क्या है इसे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने यहां समझा दिया है। इसे रखने का प्रयोजन यह बताया गया है कि अगर यह अनुच्छेद नहीं रखा जताा है तो इन विभिन्न अधिनियमों और कानूनों को लेकर उठने वाले मामलों पर निर्णय देना उच्चतम न्यायालय के अधिकार में न रह जायेगा। परन्तु इस समूची स्थिति के सम्बन्ध में अपना मेरा मत कुछ भिन्न है। मेरी राय में इस नवीन अनुच्छेद का सारा प्रयोजन इतना ही है कि भारत शासन अधिनियम तथा भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के निर्वचन के प्रश्न को लेकर जो मामले खड़े हों उनको वही मर्यादा प्राप्त रहे जो कि प्रस्तुत संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों के निर्वचन को लेकर उठने वाले वादों को प्राप्त हो। मैं नहीं समझता कि इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में यह माना जा सकता है कि संविधान में इसी के द्वारा पहली बार और केवल इस स्थल पर ही इसकी व्यवस्था की जा रही है कि संविधान के प्रवर्तन में आने के पहले, इस अनुच्छेद में उल्लिखित विभिन्न अधिनियमों को लेकर उठने वाले मामलों का निपटारा किया जा सके। इसको रखने का मुख्य प्रयोजन मेरी समझ में तो यही प्रतीत होता है कि भारत शासन अधिनियम तथा भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के निर्वचनों के सम्बन्ध में उठने वाले वादों का वही महत्त्व रहे जो इस संविधान के निर्वचन को लेकर उठने वाले वादों को प्राप्त हो। मेरी राय में इस अनुच्छेद की वाक्य रचना ऐसी नहीं है जो सन्तोषजनक कही जा सके। पहली बात तो यह है कि इसमें सभी बातें उलटे क्रम में रखी गई हैं। जिन बातों को नीचे रखना चाहिये था उन्हें ऊपर रख दिया गया है और जिन्हें ऊपर रखना चाहिये था उन्हें नीचे। इसमें बजाय यह कहने के भारतीय शासन अधिनियम तथा भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के निर्वचन को लेकर उठने वाले मामलों का निर्णय यह मान कर किया जायेगा कि मानों वह मामले संविधान के

[डा. पी.एस. देशमुख]

ही निर्वचन को लेकर उठे हों, सभी बातें उलटे ढंग से कही गई हैं। और फिर दूसरी बात यह है कि स्वतंत्रता—अधिनियमादि को लेकर उठने वाले मामलों के निपटारे की व्यवस्था के लिये अगर कोई प्रावधान रखना जरूरी है तो हमारा प्रयोजन, मैं नहीं समझता कि इस अनुच्छेद की जो वाक्य रचना है उससे पूरा हो पायेगा। माननीय डा. अम्बेडकर के विचारार्थ, यही चन्द बातें मैं यहां इस सम्बन्ध में कहना चाहता हूं। अपनी बात को और स्पष्ट कर देने के ख्याल से मैं उनको यहां दुहराये देता हूं। इस अनुच्छेद में दो त्रुटियां हैं। पहली तो यह कि इसकी रचना संतोषप्रद नहीं है। और दूसरी त्रुटि यह है कि अगर इस अनुच्छेद का अभिप्राय यही है कि इसके न रखने से भारत शासन अधिनियम तथा भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम को लेकर उठने वाले मामलों का निर्णय उच्चतम न्यायालय न कर सकेगा तो मेरी राय में इस अनुच्छेद के द्वारा भी इस बात की समुचित व्यवस्था न हो सकेगी।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** क्या सभा को श्री अल्लादी कृष्णास्वामी का मत जानने का भी मौका मिल सकेगा?

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** मैं इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना चाहता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** माननीय मित्र श्री टेकचन्द बख्शी के संशोधन को मैं स्वीकार करता हूं, श्रीमान्। बात सीधी सी है। भारत शासन अधिनियम 1935 को तथा भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम को और उसके अधीन पास किये गये आदेशों को, उस दिन से जिस दिन कि यह संविधान प्रवर्तन में आयेगा, हम अवश्य ही निरसित कर देने जा रहे हैं। पर इस सम्बन्ध में यह मालूम रहना चाहिये कि इन अधिनियमों को तो हम अवश्य ही प्रभाव-शून्य बना दे रहे हैं पर इसका मतलब यह नहीं है कि भारत शासन अधिनियम के अधीन जो भी अधिकार या कर्त्तव्य प्राप्त रहेंगे उनको भी हम समाप्त कर दे रहे हैं सुतरा अगर ऐसे लोग हैं जिन्हें भारत शासन अधिनियम के प्रावधानों के अधीन कतिपय अधिकार प्राप्त हो गये हैं और अब परिसीमन सम्बन्धी नियमों द्वारा उनके अधिकारों की समाप्ति हो जाती है तो स्पष्टत: यह आवश्यक है कि उनके इन अधिकारों के सम्बन्ध में निर्णय देने के लिये एक न एक व्यवस्था होनी ही चाहिये। इसी स्थिति के निराकरण के लिये, अर्थात् जिन लोगों ने वर्तमान भारत शासन अधिनियम के अधीन कुछ अधिकार प्राप्त कर लिये हैं, जिनके सम्बन्ध में किसी न्यायालय में फैसला नहीं हुआ है, उन पर फैसला देने की व्यवस्था करने के लिये इस अनुच्छेद का रखना आवश्यक है। मैं मानता हूं कि इसकी व्यवस्था हम अन्य दो और उपायों के द्वारा भी कर सकते थे। पहला उपाय तो हम यह अपना सकते थे कि अनुच्छेद 110 में, जहां हमने ''इस संविधान'' शब्दों का प्रयोग किया है, जो भाषा प्रयुक्त हुई है उसमें इतना संशोधन कर देते कि इतना ही वहां लिखते कि ''any law regarding the Constitution relating to the Constitution of the country'' उतने ही से सम्भवत: हमारा काम चल जाता पर बात यह है कि ऐसा करने में हमें इसी शब्दावली को तीन या चार स्थलों पर दुहराना पड़ता। बजाये उसे बार-बार दुहराने के तय यह पाया कि सर्वोत्तम उपाय यह होगा कि

''इस संविधान'' का मतलब क्या है इसे बताने के लिये एक स्वतंत्र खंड ही रख दिया जाये। मेरी समझ में यह खंड नितांत आवश्यक है और इसे विधान में हमें रखना ही चाहिये।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1909 और 1926 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 122 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद रखा जाये:

'122-(क). इस अध्याय में इस संविधान के निर्वचन के सारवान विधि-प्रश्न के बारे में जो निर्देश है उसका अर्थ ऐसा किया जायेगा कि मानो उसके अन्तर्गत भारत शासन अधिनियम 1935 के, अथवा उसके अधीन बनाये गये किसी परिषदादेश या आदेश के, अथवा भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के, अथवा उसके अधीन बनाये गये किसी आदेश के निर्वचन के सारवान विधि-प्रश्न के निर्देश भी है।' ''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 122-(क) को विधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 123

***अध्यक्ष:** अब अनुच्छेद 123 लिया जाता है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अनुच्छेद 123 का सम्बन्ध संविधान के ऐसे अंशों से है जिन्हें हम बराबर हटाते आ रहे हैं। इसलिये इस अनुच्छेद को केवल सभा के समक्ष उपस्थित मात्र कर देना चाहिये और सम्भवत: सभा उसे अस्वीकार कर देगी क्योंकि अब यह अनावश्यक है।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 123 को संविधान का अंग माना जाये।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 123 को संविधान से हटा दिया गया।

***अध्यक्ष:** अब हम पुन: उन अनुच्छेदों की ओर आते हैं जो राज्यों के सम्बन्ध में हैं। हमने अनुच्छेद 170 तक विचार कर लिया है। उसके आगे के अनुच्छेद में प्रान्तीय विधानमंडलों में बरती जाने वाली कार्यप्रणाली की चर्चा है।

अनुच्छेद 191

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं यह सुझाव दूंगा कि अब हमें अनुच्छेद 191 को तथा उसके आगे के अनुच्छेदों को लेना चाहिये। इसमें तथा इसके आगे के अनुच्छेदों में, राज्यों

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

के उच्च न्यायालयों से सम्बन्ध रखने वाली बातों की चर्चा की गई है। इसलिये इन पर विचार करना सभा के लिये आसान होगा क्योंकि हमने उच्चतम न्यायालय से सम्बन्ध रखने वाले ऐसे ही अनुच्छेदों पर अभी-अभी विचार किया है।

***अध्यक्ष:** अगर ऐसी बात है तो मैं 191 और उसके बाद के अनुच्छेदों को ही लेता हूं। ये सभी उच्च न्यायालयों के सम्बन्ध में हैं और उच्चतम न्यायालय सम्बन्धी प्रावधानों पर हम अभी-अभी विचार कर चुके हैं। उच्च न्यायालय सम्बन्धी प्रावधान उच्चतम न्यायालय सम्बन्धी प्रावधानों से बिल्कुल मिलते जुलते हैं, इसलिये सदस्यों को इन पर विचार करने में कोई कठिनाई न होगी। इसलिये हम अब अनुच्छेद 191 को ही लेते हैं।

(संशोधन नं. 2563, 2564, 2565 तथा 2566 पेश नहीं किये गये।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** रस्मी तौर पर मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्:

''कि अनुच्छेद 191 के खंड (1) के उपखंड (क) में 'पूर्वी पंजाब का उच्च न्यायालय और अवध का मुख्य-न्यायालय' शब्दों की जगह 'पूर्वी पंजाब, आसाम और उड़ीसा के उच्च न्यायालय' शब्द रखे जायें।''

मैं यह भी प्रस्ताव पेश करता हूं, श्रीमान् कि:

''संशोधन सूची के संशोधन नं. 2567 और 2570 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 191 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:

'191-(1) प्रत्येक राज्य के लिये एक उच्च न्यायालय होगा।

(2) इस संविधान के प्रारम्भ होने से ठीक पहले किसी प्रान्त में वर्तमान उच्च न्यायालय को इस संविधान के प्रयोजन के लिये, तत्स्थानीय राज्य के लिये होने वाला उच्च न्यायालय समझा जायेगा।

(3) इस अनुच्छेद में निर्दिष्ट प्रत्येक उच्च न्यायालय पर इस अध्याय के प्रावधान लागू होंगे।''

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** हम पहले इसी संशोधन पर विचार कर लें तो ज्यादा अच्छा होगा क्योंकि अगर सभा इसे स्वीकार कर लेती है तो इस सम्बन्ध में आये और अन्य संशोधन अनावश्यक हो जायेंगे। इसमें शक नहीं कि इस संशोधन से इस अनुच्छेद की पूरी रूपरेखा ही उलट-पुलट हो जाती है पर इससे अनुच्छेद में सरलता भी आ जाती है।

***अध्यक्ष:** कुछ और संशोधन हैं जिनकी सूचना मुझे दी गई है। मैं उनको पढ़कर देखे लेता हूं।

(संशोधन नं. 2568 और 2577 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** अब डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन के सिवाय और कोई संशोधन नहीं रह जाते हैं। क्या कोई सदस्य संशोधन अथवा अनुच्छेद पर कुछ कहना चाहते हैं?

प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन नं. 2567 और 2570 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 191 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:

'191-(1) प्रत्येक राज्य के लिये एक उच्च न्यायालय होगा।

(2) इस संविधान के प्रारम्भ होने के ठीक पहले किसी प्रान्त में वर्तमान उच्च न्यायालय को इस संविधान के प्रयोजन के लिये, तत्स्थानी राज्य के लिये होने वाला उच्च न्यायालय समझा जायेगा।

(3) इस अनुच्छेद में निर्दिष्ट प्रत्येक उच्च न्यायालय पर इस अध्याय के प्रावधान लागू होगे।' ''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 191 को, इसके संशोधित रूप में, विधान का अंग समझा जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 191 को, अपने संशोधित रूप में, संविधान में शामिल किया गया।

***अध्यक्ष:** एक बात मैं छोड़ गया। प्रो. शाह का एक प्रस्ताव है—संशोधन नं. 2562—कि एक नया अनुच्छेद 191 (क) जोड़ दिया जाये। मैं नहीं कह सकता कि इस समय यह लिया जा सकता है या नहीं। क्या प्रो. शाह इसे पेश करना चाहते हैं?

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): हां मैं उसे पेश करना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** उच्चतम न्यायालय के प्रसंग में क्या इस प्रश्न पर हम विचार नहीं कर चुके हैं?

***प्रो. के.टी. शाह:** मैं जानता हूं, इस प्रश्न पर विचार किया जा चुका है।

***अध्यक्ष:** फिर उस सूरत में उस पर पुन: विचार करने में कोई लाभ है?

***प्रो. के.टी. शाह:** ऐसी हालत में मैं उसे नहीं पेश करूंगा।

(संशोधन नं. 2562 पेश नहीं किया गया।)

अनुच्छेद 192

(संशोधन नं. 2578 और 2580 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** संशोधन नं. 2581 डा. अम्बेडकर के नाम से है। इसे रस्मी तौर पर पेश कर देना चाहिये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** रस्मी तौर पर मैं यह प्रस्ताव पेश करता हूं, श्रीमान्:

''कि अनुच्छेद 192 के परन्तुक में 'और इस अध्याय के आगामी प्रावधानों के अनुसार प्रधान द्वारा नियुक्त किन्हीं अपर न्यायाधीशों को मिला कर उन' शब्दों को हटा दिया जाये और 'निश्चित करे' के पहले 'समय-समय पर' शब्द जोड़ दिये जायें।''

मैं यह भी प्रस्ताव पेश करता हूं, श्रीमान्:

''कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 2581 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 192 के स्थान पर निम्नलिखित नये अनुच्छेद रखे जायें:

'अनुच्छेद 192, उच्च न्यायालय अभिलेख न्यायालय होंगे—प्रत्येक उच्च न्यायालय और अभिलेख न्यायालय होगा तथा उसे अपने अवमान के लिये दंड देने की शक्ति के सहित, ऐसे न्यायालय की सब शक्तिया होंगी।

192-(क) उच्च न्यायालयों का गठन—प्रत्येक उच्च न्यायालय मुख्य न्यायाधिपति तथा ऐसे अन्य न्यायाधीशों से मिल कर बनेगा जिन्हें राष्ट्रपति, समय-समय पर, नियुक्त करना आवश्यक समझे:

परन्तु इस प्रकार नियुक्त न्यायाधीश, उस अधिकतम संख्या से अधिक न होंगे जिसे राष्ट्रपति, समय-समय पर, उस न्यायालय के सम्बन्ध में आदेश द्वारा, नियत करे।' ''

संशोधन 2582 पेश नहीं किया गया।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं केवल एक बात की और सभा का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं। अनुच्छेद 192 में कहा गया है कि:

''प्रत्येक उच्च न्यायालय उल्लेख न्यायालय होगा और वह एक मुख्य न्यायाधीश तथा ऐसे अन्य न्यायाधीशों को मिलकर बनेगा जिन्हें राष्ट्रपति, समय-समय पर, नियुक्त करना आवश्यक समझेगा।''

और परन्तुक में यह कहा गया है:

''परन्तु इस प्रकार नियुक्त न्यायाधीशों और इस अध्याय के आगामी प्रावधानों के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किन्हीं अवर न्यायाधीशों को मिला कर उनकी संख्या किसी भी समय

उस अधिकतम संख्या से अधिक न होगी जो राष्ट्रपति उस न्यायालय के सम्बन्ध में आदेश द्वारा निश्चित करे।''

यहां 'राष्ट्रपति' शब्द रखने पर मेरी आपत्ति सिर्फ यही है कि यह प्रकार्य है उच्चतम न्यायालय का। अगर न्यायालय यह अनुभव करता है कि अगर न्यायालय में अमुक संख्यक न्यायाधीश नहीं रहते हैं तो न्याय समुचित रूप से न किया जा सकेगा तो उतने संख्यक न्यायाधीशों को रखने की सिफारिश करना उनके बस की बात है। इसलिये मेरा यह ख्याल है कि राष्ट्रपति न्यायाधीशों की संख्या जब निश्चित करे तो उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति की सलाह पर या उससे परामर्श करके ही करे ताकि राष्ट्रपति को यह परामर्श देने में कि प्रत्येक उच्च न्यायालय के लिये न्यायाधीशों की क्या संख्या अपेक्षित है, उच्चतम न्यायालय को ही प्रेरणा प्राप्त रहे। मैं समझता हूं कि संविधान में ऐसी ही व्यवस्था होनी चाहिये।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन नं. 2581 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 192 के स्थान पर निम्नलिखित नये अनुच्छेद रखे जायें:

'192. उच्च न्यायालय अभिलेख न्यायालय होंगे—प्रत्येक उच्च न्यायालय अभिलेख न्यायालय होगा तथा उसे अपने अवमान के लिये दंड देने की शक्ति के सहित, ऐसे न्यायालय की सब शक्तियां होंगी।''

192(क)—उच्च न्यायालयों का गठन—प्रत्येक उच्च न्यायालय मुख्य न्यायाधिपति तथा ऐसे अन्य न्यायाधीशों से मिल कर बनेगा जिन्हें राष्ट्रपति समय-समय पर नियुक्त करना आवश्यक समझे:

परन्तु इस प्रकार नियुक्त न्यायाधीश उस अधिकतम संख्या से अधिक न होंगे जिसे राष्ट्रपति समय-समय पर उस न्यायालय के सम्बन्ध में आदेश द्वारा नियत करे।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 192 अपने संशोधित रूप में संविधान का अंग समझा जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 192 को, उसके संशोधित रूप में, संविधान में शामिल किया गया।

***अध्यक्ष:** माननीय श्री जी.एस. गुप्ते के संशोधन को, जो कि भाषा के सम्बन्ध में है हम अभी नहीं लेंगे।

अनुच्छेद 193

(संशोधन नं. 2584 पेश नहीं किया गया।)

***श्री बी. पोकर साहिब** (मद्रास : मुस्लिम): मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमान्:

''कि अनुच्छेद 193 के खंड (1) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाये:

'(1) सम्बन्धित उच्च न्यायालय के मुख्य-न्यायाधिपति के अभिस्तवन पर, सम्बन्धित राज्य के राज्यपाल से परामर्श कर लेने के बाद तथा भारत के मुख्य न्यायाधिपति की सहमति से उच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा नियुक्त करेगा तथा वह न्यायाधीश तब तक पद धारण करेगा जब तक कि वह तिरेसठ साल की आयु न प्राप्त कर ले।' ''

इस संशोधन में दो बातें निहित हैं। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के नियुक्ति विषयक अनुच्छेद पर बोलते समय भी मैंने फेडरल न्यायालय और प्रान्तीय उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधिपतियों द्वारा दिये गये स्मृतिपत्र में उल्लिखित सिफारिशों का जिक्र किया था। इसलिये मैं उन बातों को यहां दुहराना नहीं चाहता जिनका उल्लेख मैं यहां पहले कर चुका हूं। मैं सदस्यों से अनुरोध करूंगा कि वह उन बातों पर गौर करें जो फेडरल न्यायालय और प्रान्तीय उच्च न्यायालयों के मुख्य-न्यायाधिपतियों के स्मृतिपत्र में दी हुई हैं। मैं यहां इस समय उन तर्कों की आवृत्ति न करूंगा जो मैं यहां पहले रख चुका हूं।

इस अनुच्छेद में तथा मेरे संशोधन में महत्त्वपूर्ण अन्तर इतना ही है कि संशोधन में अपेक्षित यह रखा गया है कि उच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश की नियुक्ति राज्य के राज्यपाल से परामर्श कर लेने के बाद और भारत के मुख्य न्यायाधिपति की सहमति से ही होगी, पर सम्बन्धित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति की सिफारिश को ही प्रधानता दी जायेगी। इस सम्बन्ध में यह आवश्यक है कि सम्बन्धित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति की सिफारिश के अनुसार ही नियुक्ति की जाये और प्रान्त के गवर्नर से केवल परामर्श कर लिया जाये। मेरे संशोधन में इस बात पर आग्रह किया गया है कि भारत के मुख्य न्यायाधिपति की सहमति से ही नियुक्ति की जाये और यह बात महत्त्वपूर्ण है। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में केवल गवर्नर से परामर्श किया जाना चाहिये। इन नियुक्तियों में प्रान्तीय मंत्रिमंडल का कोई खास हाथ न होना चाहिये और राजनैतिक कारणों का तो इनमें कतई हाथ न होना चाहिये।

दूसरी बात जो इस संशोधन में है वह है आयु के सम्बन्ध में। इसके सम्बन्ध में मैं सभा का ध्यान फेडरल न्यायालय और उच्च न्यायालयों के मुख्य-न्यायाधीशों के स्मृतिपत्र में दी हुई सिफारिशों की ओर आकृष्ट करूंगा। इस स्मृतिपत्र में यह कहा गया है:

> ''यह आवश्यक है कि उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की निवृत्ति आयु में तीन से पांच वर्ष का अन्तर अवश्य रखा जाये। उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश की निवृत्ति-आयु की हद पैंसठ कर देनी चाहिये और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की निवृत्ति आयु की हद अड़सठ साल कर देनी चाहिये।''

उनकी सिफारिश यहां तक है कि निवृत्ति-आयु की हद पैंसठ नियत कर देनी चाहिये। हम लोग ऐसे निवृत्ति-न्यायाधीशों को भी जानते हैं जो निवृत्त होने पर भी काफी शक्ति रखते थे और उन्होंने दायित्वपूर्ण पदों पर काम किया है। ऐसी हालत में मैं कोई कारण नहीं देखता कि क्यों उनको कम उम्र में ही निवृत्त होने पर बाध्य किया जाये। इसलिये माननीय सदस्यों से मैं अनुरोध करूंगा कि वे फेडरल न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधिपतियों की सिफारिशों पर पर्याप्त रूप से विचार करें। उन्होंने निवृत्ति-आयु की हद पैंसठ रखी है और मेरे संशोधन में वह तिरेसठ रखी गई है। इस सम्बन्ध में जो कुछ कह चुका हूं उससे अधिक मैं और कुछ नहीं कहना चाहता हूं।

इसके बाद सभा मंगलवार, 7 जून सन् 1949 ई. के प्रात: आठ बजे तक के लिये स्थगित हुई।